पंडितप्रवर राजमल्लजी विरचित—

श्रीजम्बूस्वामीचरित्र।

संस्कृत पद्यरचनासे संक्षिप्त टीकाकार-

श्रीमान् ब्रह्मचारी सीतलप्रसादजी।

[प्रवचनसार, समयसार, नियमसार, परमात्म प्रकाश, पंचास्तिकाय, समाधिशतक, इष्टोपदेश, तत्वभावना, स्वयंभूस्तोत्र, तत्वसार आदिके टीकाकार व सहजसुख साधन, गृहस्थधर्म और अनेक जैनग्रन्थोंके सम्पादनकर्ता।]

प्रकाशक-

मूलचन्द किसनदास कापड़िया,

मालिक, दिगम्बर जैनपुस्तकालय-सूरत।

डभका (पादरा, बड़ौदा) निवासी स्व० सेठ कालीदास अमथाभाईके स्मरणार्थ उनके सुपुत्र सेठ सौभाग्यचन्दकी ओरसे " जैनमित्र " के ३९ वें वर्षके ग्राहकोंको भेट।

वीर सं० २४६५ [प्रति १५००

मूल्य—सवा रुपया।

भूमिका।

पंडित राजमल्लजीने पहला अध्याय १४८ श्लोकका लिखा है उसका भावार्थ)।

मैं श्री वीर भगवानकी स्तुति करता हूं जो अनंत दर्शन अनंतज्ञान, अनंतवीर्य व अनंतसुख इन चार चतुष्टयके धारी हैं व जिनके गर्भादि पांचकल्याणक हुए, ऐसा आचार्य कहते हैं। परम शुद्ध सिद्धप्रभु जो मोक्षलक्ष्मी प्रदान करें, जो बहिरंग अंतरंग स्वभाव पर्यायोंमे निरंतर परिणमन करते रहते हैं। श्री आचार्य, उपाध्याय व साधु ये तीन पदधारी मुनिराज जयवंत हों जो शय्या, आसन, शयनादिसे विरक्त होकर चारित्रमोहशत्रुको जीतनेके लिये तप व चारित्रके गुणोंको धारते हैं। स्याद्वाद वाणी सरस्वती मेरे मनरूपी कमलमें अपना चरण धारण करें, जो सूर्यकी किरणावलीके समान ...के अज्ञान अंधकारको दूर करनेवाली है व जिसने सर्व पदार्थोंके स्वरूपको यथार्थ दिखलाया है।

पातशाह अकबरका वंश।

दिल्लीके पादशाह अद्भुत ऐश्वर्यवान व दयावान अकबर थे, जो प... ...बरके पौत्र थे व जैसा नाम था वैसे गुणोंके धारी थे। वह पृथ्वीपर प्रसिद्ध चगत्ता वंशमें थे। जिसमें भाग्यवान बहुतसे बादशाह पहले होगये थे। चंद्रकीर्तिके समान महान कवि भी अकबर पातशाहका महात्म्य प्रकाश नहीं कर सके। बाबर वंशकी

कुछ कीर्ति कही जाती है। बाबरने शत्रुओंको विजयकर दिल्ली सिंहासनका स्वामीपना प्राप्त किया। अपना राज्य समुद्र तक बढ़ाया व चारों तरफ यश फैलाया। उनके पीछे उनके पुत्र हुमायुने राज्य किया, जो सूर्यसम तेजस्वी था, जिसने आधीन राजाओंसे कर एकत्रकरके भी जनताको इच्छानुकूल धन दिया, प्रजाका न्यायसे पालन किया।

अकबरका महात्म्य।

इनके पुत्र साह अकबर हुए, जो भुजबलसे भारतमें एकछत्र राज्य करते थे, बड़े बुद्धिमान थे, तेजस्वी थे, सर्व शत्रुओंको जीतनेमें प्रवीण थे। यह बालकपनमें भी चंद्रमाके समान शोभते थे। इस समय भी राजालोग उनको नमन करते थे। क्रमसे यौवनवान हुए तब अपने प्रतापसे शत्रुओंको युद्धक्षेत्रसे भगा देते थे। उनके पास हाथी, घोड़े, रथ, पयादोंकी बड़ी सेना थी। करोड़ोंका द्रव्य था। दुर्जनोंको ऐसा वश किया था कि अकबरका नाम सुन काांपते थे। गुजरातदेशमें चढ़ाई करके सिंहके समान वैरीरूप गजोंको भगा दिया। गुजरातदेशको वश करते हुए सूरतका किला ले लिया, जिसका लेना बहुत कठिन था। शत्रुओंको जीतनेमें बड़ा प्रतापशाली था। जैसा वह युद्धमें वीर है, वैसी ही उसके भीतर स्वभावसे दया है। वह अपने अखण्ड पुरुषार्थसे प्रजाका योग्य रीतिसे पालन करता था। कठिन कर नहीं लेता है व मदवान भी नहीं है। जजिया नामका कर पादशाह अकबरने माफ कर दिया। इससे इनकी कीर्ति दूर दूर तक फैल गई। सब लोग पादशाहको धर्मराजके भावसे देखते हैं। जो प्रमादी जन अन्यायसे प्रवर्तते हैं उनके

...दको दूर करनेमें चतुर हैं। बादशाह अकबरके दानादि गुणोंकी महिमा हम वर्णन नहीं कर सके। दिग्मात्र कुछ कहा है।

चिरकाल यह जीवित रहें ऐसी आशीस प्रजा दिया करती है। वे चंद्रमाके समान पृथ्वीतलपर अमृतकी वर्षा मानो करते हैं। ...में प्रजा बड़ी प्रसन्न थी। बादशाहकी राजधानी आगरा नगर थी।

आगराका वर्णन।

यह सब नगरोंमें प्रधान है, सर्व पदार्थोंकी खान ही है। आगरा नगरका कोट बहुत ऊँचा है, मानो स्वर्गके देखनेको ऊपर जारहा है। पाषाणका बना है। जिस नगरमें ऊंचे ऊंचे महल हैं। पंक्ति शोभित है, उनमें पवन जानेके द्वार शोभायमान हैं। यमुना नदीका पानी तरंगोंकी उछालसे गंभीर ध्वनि कर रहा है। नगरमें बड़े भाग्यवान रत्नोंके व्यापारी हैं। मार्गमें हाथी, घोड़े, रथ, पयादोंके चलनेका शब्द होरहा है। कमल समान गुणधारी व नूपुरोंकी ध्वनि करती हुई महिलाओंके संचारसे यह नगर कमलाकर दीखता है। स्त्रियोंके हावभाव विलाससे पूर्ण होनेके कारण यह नगर मानो हंस रहा है। कहीं भट्ठी जल रही है मानों नगरमें दावानल है। व्यापारी लोग माल सहित चल रहे हैं। बहुत मूल्यवान
वंशज ग॰, गात्रधारी कोल (... ...नर्मोके रखनेवाले बाजार
मदन हैं, उनके छोटे भाई साधु आसू हैं, ... दूकाने हैं।
गाढ़ रुचिवान श्री रूपचंद हैं। उनके पुत्र ...की पंक्तियां
साधु पासा हैं, जिनका यश सर्व साधुगण गाते हैं। ...के ...,
सुखी हैं व जैन धर्ममें बड़े प्रेमालु हैं। उनके विख्यात पुत्र साधु

दिशाओंमें बड़े २ मार्ग हैं। हरएक मार्गमें छोटी २ गलियां हैं। यह राजधानी बादशाहके यशके समान दिन प्रतिदिन उज्वल व ऐश्वर्यसे वृद्धिरूप है, मानो रत्नादि सहित एक महा समुद्र है। परन्तु समुद्रमें पानी नीचेको जाता है, परन्तु यह नगर सुमेरुपर्वतके समान बहुत उन्नत है। बड़े २ महलोंमें सुवर्णके कलश चढ़े हैं, वहां नानाप्रकारके धनी रहते हैं, जहां गान वादित्र होरहे हैं। नगरके बाहर नंदनवनके समान वन है जिनमें पृथ्वीको छाये हुए फलसे लदे हुए छायादार वृक्ष हैं। उस नगरके भीतर बड़े उज्वल जिनमंदिर हैं, उनमें रत्नमई प्रतिमाएं विराजित हैं, उन मंदिरोंमें पूजाके महान् उत्सव हुआ करते हैं। जन्मकल्याणादिके उत्सव होते हैं।

जैसे सुमेरु पर्वत देवोंके द्वारा लाए हुए क्षीर समुद्रके गंधोदकसे शोभता है वैसे ही यहां कभी शांतिककर्ममें अभिषेक करनेके लिये जैन लोग यमुना नदी तक पंक्तिबद्ध खड़े होकर देवोंके समान जल लाते हैं। मंदिरोंमें जय जय शब्द होरहे हैं। यतिगण व श्रावकजन स्तुति पढ़ रहे हैं, उनकी ध्वनि सुन पड़ती है। कितने ही श्रावक अपनेको कृतार्थ मानके मंदिरोंमें जारहे हैं। वहां जाकर सर्व आरम्भको छोड़कर धर्मध्यानमें लवलीन होरहे हैं। इस तरह नाना गुणोंसे [illegible]

टकुर नामके [illegible]

भी कहते हैं

[illegible]

उत्पन्न किया है। उसने यमुना नदीतट पर विश्रांतिके लिये घाट व स्थान बना दिया है, लोग स्नान करके वहां विश्राम करते हैं। यह घाट स्वर्गकी शोभाको विस्तार रहा है। उनके साथ मुख्य कार्यकर्ता गढ़मल्ल साहु हैं, यह वैष्णवधर्म रत हैं। गंगादि तीर्थ जाते हैं, धनवान हैं व परोपकारी हैं, जिससे यशस्वी हो रहे हैं। इन दोनोंमें बड़ी प्रीति है। खजानेकी शोभा इनसे है।

अकबरके समय जैन भट्टारक।

काष्ठसंघ माथुरगच्छ पुष्करगणमें लोहाचार्य आदि अनेक आचार्य हुए हैं। उनहीके आम्नायमें भट्टारक मलयकीर्ति देव हुए। उनके पीछे गुणभद्रसूरि भट्टारक हुए। उनके पद पर सूर्यके समान तेजस्वी भानुकीर्ति भट्टारक हुए। यह अनेक शास्त्रोंके पारगामी थे। भव्य जीवरूपी कमलोंको प्रफुल्लित करनेको सूर्य ही थे। उनके पद पर श्री **कुमारसेन** भट्टारक हैं, जो बड़े शांत व प्रतापी चंद्रमाके समान पट्टरूपी समुद्रको बढ़ानेवाले है और ब्रह्मचर्य व्रतसे कामकी सेनाको जीतनेवाले हैं।

अलीगढ़के धनिक टोडरमल श्रावक।

इनके समयमें काष्ठासंघको माननेवाले प्रतापशाली अग्रवाल वंशज गर्ग गोत्रधारी कोल (अलीगढ़) नगरनिवासी साधु (साहु) मदन हैं, उनके छोटे भाई साधु आसू हैं, उनके पुत्र जिनधर्ममें गाढ़ रुचिवान श्री रूपचंद हैं। उनके पुत्र अद्भुत गुणोंके धारक साधु पासा हैं, जिनका यश सर्व साधुगण गाते हैं। दानी, यशस्वी, सुखी हैं व जैन धर्ममें बड़े प्रेमालु हैं। उनके विख्यात पुत्र साधु

टोडर हैं। यह महान उदार, महा भाग्यवान, कुलके दीपक हैं, चारित्रवान हैं, सभामें मान्य हैं, देवशास्त्र गुरुके परम भक्त हैं, परोपकारमें कुशल, दानमें अग्रगामी, वात्सल्यांगधारी हैं। इनका मन धर्मकार्योंमें ही लगता है व इनका मन सदा अर्हतके गुणोंमें मग्न रहता है, धर्म व धर्मके फलमें अनुरागी हैं, कुधर्मसे विरागी हैं, परस्त्रीके त्यागी हैं, परदोष कहनेमें मूक हैं, गुणवान होनेपर भी अपनेको बालकवत् समझते हैं, अपनी बड़ाई कभी नहीं करते हैं. स्वप्नमें भी किसीका बुरा नहीं विचारते हैं, अधिक क्या कहें, साधु टोडर सर्व कार्य करनेमें समर्थ हैं, धन व पुत्रादिसे शोभित हैं, सर्व जीवोंपर दयालु हैं, सर्व शास्त्रोंमें कुशल हैं, सर्व कार्योंमें निपुण हैं, श्रावकोंमें महान हैं, इनकी स्त्री सुन्दरमुखी कौसुभी है जो पतिव्रता है व पतिकी आणमें चलनेवाली है। इन दोनोंके तीन पुत्र हैं जो अपराधीपर कठोर हैं, निर्दोषके उपकारी हैं। बड़ेका नाम गुणवान ऋषभदास है, दूसरेका नाम मोहन है। यह शत्रुओंको भस्म करनेमें अग्निकणके समान हैं। तीसरा माताकी गोदमें खेलनेवाला रूपमांगद नामका है जो रत्नसम प्रकाशमान है।

साधु टोडरमलके समयकी उपयोगी बातें।

इन सब परिवारके साथमें साधु टोडर रहते हैं जो एक दिन मथुरानगरीमें सिद्ध क्षेत्र स्थित प्रतिमाओंके दर्शनके लिये यात्रार्थ आए। मथुरानगरकी हदके पास एक मनोहर स्थान देखा जो सिद्ध क्षेत्रके समान महारिषियोंके वाससे पवित्र था। वहीं धर्मात्मा साहुने 'निःसही' नामके स्थानको देखा, जहां अंतिम केवली श्री जंबूस्वामीका

विहार हुआ है व जंबुस्वामीके पदसेवी विद्युच्चर मुनिका आगमन हुआ है। इनके साथ बहुतसे और मुनि थे। यहीं पर महामोहको जीतनेवाले, अखंड व्रतके पालनेवाले विद्युच्चरादि साधुओंने संन्यास किया था, वे भिन्न२ स्वर्गादिमें गए हैं। शास्त्रज्ञाता विद्वानोंने जंबु-स्वामीके व विद्युच्चरके स्थानोंके पास आये साधुओंके स्थान स्थापित किये थे। कहीं पांच कहीं आठ कहीं दश कहीं बीस स्तूप बने हुए थे। काल बहुत होजानेसे व द्रव्यके जीर्ण स्वभावसे ये सब स्तूप जीर्ण होगये थे। इनको जीर्ण देखकर साधु टोडरने जीर्णोद्धार करानेका उत्साह किया। इस बुद्धिमानने धर्मकार्य करनेका मनमें दृढ़ विचार किया। साधु टोडरकी धर्म व धर्मके फलमें आस्तिक्य बुद्धि थी। उसको श्रद्धान था कि आत्मा है, वह अनादिसे कर्मोंसे बंधा है, कर्मोंके क्षयसे मोक्ष पाता है तब सर्व क्लेश मिट जाते हैं व अनंत सुखकी प्राप्ति होती है। जब तक इस अभूतपूर्व व कठिन मोक्षका लाभ नहीं तबतक बुद्धिमानोंको अवश्य धर्मकार्य करते रहना चाहिये।

मोक्ष तो महात्माओंको तब ही सुखसे साध्य होता है जब काललब्धि आदि मोक्षकी सामग्री प्राप्त होती है। यह मोक्ष भी भव्योंको होगा जिनको सम्यक्तकी प्राप्ति हो जायगी। परन्तु अभव्योंको मोक्ष कभी नहीं होता है, न हुआ है न होगा। वे अभव्य नित्य आत्मसुखको न पाकर दुःखी रहेंगे तथापि जो अभव्य क्रिया मात्रमें रागी होकर धर्मसाधन करेंगे वे पुण्यके फलसे महान् भोगोंको पाएंगे। वे ग्रैवेयिक तकके सुख पा सक्ते हैं परन्तु स्वर्गादिसे आकर वे विचारे तिर्यंच मनुष्यादि गतियोंमें तीव्र दुःख उठाते हुए भव भ्रमण किया करते हैं। उस सम्यग्दर्शन धर्मको सदा नमस्कार हो

जिससे निरंतर सुख होता है और उस मिथ्यात्व कर्मरूपी पापको धिक्कार हो जो आनन्दका घातक है। जिस मिथ्यात्वके उदयसे प्राणीके भीतर कभी भी जीवदया नहीं होसक्ती है उसकी दया भी अदयाके समान है, क्योंकि आत्माकी सच्ची रक्षा कैसे होती है इसे वह नहीं जानता है। मिथ्यात्वका अभाव होनेपर व सम्यक्तके होनेपर यदि सम्यक्तीमें जीव घात भी हो तौभी उसके परिणामोंमें दया वर्तती है। मिथ्यात्वकी बुराई व सम्यक्तकी महिमा वचन अगोचर है। संसारमें सर्व अनर्थपरम्पराका मूल मिथ्यात्व है। धर्मकी इच्छा करनेवालोंको उचित है कि प्रथम ही मिथ्यात्वको त्याग करके धर्मवृक्षके मूलभूत सम्यग्दर्शनको ग्रहण करे। तीर्थंकरोंने धर्म दो प्रकारका कहा है-एक निश्चय धर्म, दूसरा व्यवहार धर्म।

निश्चय धर्म।

निश्चयधर्म अपने आत्माहीके आश्रय है, व्यवहारधर्म परके आश्रय है। आत्मा चैतन्यमई एक अखंड पदार्थ है, वचन अगोचर है। अपने आत्माका स्वानुभूति द्वारा लाभ करना निश्चयधर्म है। यह स्वानुभवरूपी धर्म अंतरङ्गकी रिद्धि है। वही शुद्धात्मा है, वही परम तप है, वही सम्यग्दर्शन ज्ञान चरित्र है, वही अविनाशी सुख है, वही संवर है, वही आठों कर्मकी निर्जराका हेतु है। अधिक क्या कहें। इसीके द्वारा आत्माको मुक्ति प्राप्त होती है। कहा है:—

आत्मा चैतन्यमेकार्थस्तच्च वाचामगोचरः।
स्वानुभूत्यैकगम्यत्वात् स धर्मः पारमार्थिकः॥ १०२॥
स एवांतर्द्धिः शुद्धात्मा स एव परमं तपः।
स एव दर्शनं ज्ञानं चारित्रं सुखमच्युतम्॥ १०३॥

स एव संवरः प्रोक्तः निर्जरा चाष्टकर्मणाम् ।
किमत्र विस्तरेणापि तत्फलं मुक्तिरात्मनः ॥ १०४ ॥

व्यवहार धर्म।

जब कभी चारित्रमोहके उदयसे सम्यग्दृष्टी इस निश्चयधर्ममें चल नहीं सक्ता तब व्यवहारधर्मकी इच्छा न रहते हुए भी व्यवहार धर्मोंमें वर्तता है। जिससे फिर निश्चयमें पहुंच जावे। इस बातमें कोई संशय नहीं करना चाहिये। जो जलका प्यासा होता है वह जल दूर होने पर भी उसकी इच्छासे जलके पास जाता है, वैसे ही अतीन्द्रिय सुखका प्रेमी सम्यग्दृष्टी अपने आत्मीक स्वभावसे प्राप्त सुखका लाभ न होने पर उस सुखकी प्राप्ति करानेमें निमित्त ऐसे परतत्वोंमें प्रीति करता है तब रागभावका विकल्प रखता हुआ वह आत्माके गुणोंका चिन्तवन करता है, व्रत आदि व्यवहार धर्ममें आरूढ़ होता है। कषायोंके आधीन होकर अशुभ ध्यानमें न फंस जावे इसलिये आह्वानन आदि विधिसे श्री अर्हतकी पूजादि करता है। एकेन्द्रियसे पंचेन्द्रिय पर्यंत जीवोंको अपने समान देखता है, उनको दुःख देनेसे भयभीत रहता है, इसीलिये हिंसादि पापोंसे विरक्त रहकर अहिंसादि व्रतोंको पालता है। इनका पालन सर्वदेश साधुओंसे महाव्रतरूप व एकदेश श्रावकोंसे अणुव्रतरूप होता है। इन सबका लक्षण आगममें विस्तारसे कहा है, यहां व ेका सम्बन्ध नहीं है। इस व्यवहार धर्मका फल इन्द्रादि पदका का.. है। जो धान्यके अर्थी कुटुम्बीको परालके समान है। अर्थात् जैसे धान्यका अर्थी कृषक धान्यको चाहता है परालको नहीं,

वैसे ही सम्यग्दृष्टी महात्मा मोक्ष-सुखको ही चाहते हैं। सांसारिक सर्व सुख पराकके समान तुच्छ व त्यागयोग्य है, उसे नहीं चाहते हैं।

५१४ स्तूप बनवाए।

इस तरह धर्म व धर्मके फलके ज्ञाता साधु टोडरने पुण्यके हेतु नए स्तूप बनवाए। उसका यश तो स्वयं फैल गया। कोई धनको यशके लिये खरचते हैं, कोई धर्मके लिये खरचते हैं। टोडर साधुका धन धर्म व यश दोनोंका कारण हुआ, जैसे स्वादिष्ट व हितकारी औषधि। उस पुण्यवान्‌ने शुभ मुहूर्तमें मङ्गल पूजाके साथ कार्य प्रारंभ कराया। फिर उत्साहपूर्वक एकाग्र चित्तसे सावधान होकर महान उदार भावसे कार्यको पूर्ण कराया। पांचसौ एक स्तूपोंका एक समूह व तेरह स्तूपोंका दूसरा समूह स्थापित कराया व बारह द्वारपाल आदिकी स्थापना की। इन सबकी प्रतिष्ठा सोलहसौ तीस जेठ सुदी द्वादशी बुधवारको नौघड़ी दिन चढ़े पूर्ण कराई। यह स्थान तीर्थके समान पवित्र है। विजयार्द्ध पर्वतके कूटके समान ऊंचे २ स्तूप स्थापित कराये। सूरिमंत्रके साथ पूजा प्रतिष्ठा कराई व चार प्रकार संघको निमंत्रित किया तब आशीर्वाद रूपसे स्वयं गुरुमहाराजके दिए हुए पुष्पोंको मस्तक पर रखा। प्रतिष्ठा कराके साधु टोडरका उत्साह बहुत बढ़ गया, जैसे चंद्रमाके दर्शनसे समुद्र बढ़ जाता है।

जम्बूस्वामीचरित्र बनानेकी प्रार्थना।

एक दफे साहुजीने सभाके मध्य हाथ जोडकर विनती की। कृपा करके जम्बूस्वामी पुराणकी रचना करिये। उसने भवांतरमें क्या किया था, कैसे आत्मकल्याण किया व केवली होकर अविनाशी

जैसे एक मासमें शुक्ल पक्षके पीछे कृष्ण पक्ष व कृष्ण पक्षके पीछे शुक्ल पक्ष आता है, इसी तरह ये दोनों काल क्रमसे वर्तते हैं। अब यहां भरतमें अवसर्पिणीकाल चल रहा है। यहां जब पहला काल आर्य खण्डमें था तब उसकी स्थिति चार कोड़ाकोड़ी सागरकी थी।

भोगभूमिकी शोभा।

इस पहले सुखमा सुखमाकालमें देवकुरु व उत्तरकुरु उत्तम भोगभूमिके समान अवस्था थी तब जो युगलिये मनुष्य उत्पन्न होते थे उनकी आयु तीन पल्यकी होती थी व शरीरकी ऊंचाई ६००० छः हजार धनुषकी होती थी। शरीरका संहनन वज्रवृषभ नाराच होता था। अर्थात् वज्रके समान दृढ़ नसें, हड्डियोंके बंधन, व हड्डियां होती थीं। उनका स्वरूप सुन्दर व शांत होता था। उनका शरीर तपाए सुवर्णके समान चमकता था। मुकुट, कुंडल, हार, भुजबन्द, कड़े, करधनी तथा ब्रह्मसूत्र, ये उनके नित्य पहरावके आभूषण थे। इस उत्तम भोगभूमिके पुरुष पूर्व पुण्यके उदयसे रूप, लावण्य व सम्पदासे विभूषित होकर अपनी स्त्रियोंके साथ उसी तरह क्रीडा करते थे जिस तरह स्वर्गमें देव देवियोंके साथ रमण करते हैं। भोगभूमिवासी बड़े बलवान, बड़े धैर्यवान, बड़े तेजस्वी, बड़े प्रभावशाली महान पुण्यवान होते हैं। उनके कंधे बड़े ऊंचे होते हैं। उनको भोजनकी इच्छा तीन दिन पीछे होती है। तब वे बेरफलके समान अमृतमई अन्न खाकर ही तृप्त होजाने

हैं। सर्व ही भोगभूमिवासी रोग रहित, मलमूत्र नीहार रहित, बाधा रहित व खेद रहित होते हैं। उनके शरीरमें पसीना नहीं होता है व उनको कोई आजीविका नहीं करनी पड़ती है तथा वे पूर्ण आयुके भोगनेवाले होते हैं।

वहांकी स्त्रियोंकी ऊंचाई व आयु पुरुषोंके समान होती है। जैसे कल्पवृक्षमें कल्पवेलें आसक्त होती हैं इसी तरह वे अपने नियत पुरुषोंमें अनुराग रखनेवाली होती हैं। जन्म पर्यंत दोनों प्रेमसे भोग संपदाको भोगते हैं. सर्व भोगभूमिवासी स्वर्गके देवोंके समान स्वभावसे सुन्दर होते हैं। उनकी वाणी स्वभावसे मधुर होती है, उनकी चेष्टा स्वभावसे ही सुन्दर होती है। वहां पृथ्वीकायिक दश जातिके कल्पवृक्ष होते हैं। उनसे वे भोगभूमिवासी इच्छानुकूल आहार, घर, वादित्र, माला आभूषण, वस्त्र आदि भोगकी सामग्री प्राप्त कर लेते हैं। कल्पवृक्षोंके पत्ते सदा ही मंद मंद सुगंधित हवासे हिलते रहते हैं। कालके प्रभावसे व क्षेत्रकी सामर्थ्यसे ये कल्पवृक्ष प्रगट होते हैं। क्योंकि इनसे पुण्यवान मानवोंको मनके अनुसार रुचिकर भोग प्राप्त होते हैं। इसलिये इनको विद्वानोंने कल्पवृक्ष कहा है। इनकी जातियां दश प्रकारकी होती हैं। (१) मद्यांग (२) वादित्रांग (३) भूषणांग (४) पुष्पमालांग (५) ज्योतिरांग (६) दीपांग (७) गृहांग (८) भोजनांग (९) पात्रांग (१०) वस्त्रांग जैसे इनके नाम हैं वैसी ही वस्तुके प्रकट करनेमें ये परिणमन करते हैं। भोगभूमिवासी इन कल्पवृक्षोंसे प्राप्त भोगोंको अपने पुण्यके उदयसे आयु

पर्यंत भोगते रहते हैं। आयुके अंतमें जम्हाई व छींक आनेसे प्राण त्यागते हैं। वे मंद कषायी होनेसे पापरहित होते हैं। इसलिये सर्व ही स्त्री पुरुष प्राण छोड़के देव गतिको जाते हैं। उनके शरीर मेघोंके समान उड़ कर विला जाते हैं। इसतरह अवसर्पिणीके पहलेकालकी विधि थोड़ीसी वर्णन की है। शेष सर्व अवस्था देवकुरु उत्तरकुरुके समान जाननी चाहिये।

नोट—यहां कुछ श्लोक उपयोगी जानके दिये जाते हैं, जिससे पाठकोंको भोगभूमिकी अवस्थाका ज्ञान हो—

वज्रास्थिवंधनाः सौम्याः सुन्दराकारचारवः।
निष्टप्तकनकच्छाया दीप्यन्ते ते नरोत्तमाः ॥ ११ ॥
मुकुटं कुंडलं हारो मेखला कटकांगदौ।
केयूरं ब्रह्मसूत्रं च तेषां शश्वद्विभूषणम् ॥ १४ ॥
महासत्त्वा महाधैर्या महोरस्का महौजसः।
महानुभावास्ते सर्वे महीयंते महोदयाः ॥ १६ ॥
निर्व्यायामा निरातंका निर्विहारा निरामयाः।
निःस्वेदास्ते निराबाधं जीवंति पुरुषायुषं ॥ १८ ॥

इसतरह पहला काल क्रमसे ज्यों ज्यों बीतता जाता था, कल्पवृक्षोंकी शक्ति मनुष्योंकी आयु व ऊंचाई धीरे धीरे कम होती जाती थी। चार कोड़ाकोड़ी सागर बीतनेपर दूसरा सुखमा काल तीन कोड़ाकोड़ी सागरका प्रारम्भ हुआ। तब भोगभूमिके मानवोंकी आयु दो पल्यकी रह गई। शरीरकी ऊँचाई चार हजार धनुषकी

होगई। चंद्रमाकी चांदनीके समान शरीरका उज्वल वर्ण होगया। दो दिनके पीछे बहेडा (विभीतक) प्रमाण अमृतमई अल्पाहारसे तृप्ति पा लेते थे। उनकी सर्व अवस्था हरिवर्ष क्षेत्रमें स्थित मध्यम भोगभूमि वासियोंके समान होगई। तब फिर क्रमसे जैसे जैसे काल बीतता गया शरीरकी ऊँचाई, आयु, वीर्य आदि कम होते चले गये। तीन कोड़ाकोड़ी सागर काल बीतनेपर, तीसरा काल दो कोड़ाकोड़ी सागरका प्रारम्भ होगया। तब हैमवत् क्षेत्रके समान जघन्य भोगभूमिकी अवस्था प्रगट होगई। तब भोगभूमिके मानवोंकी आयु एक पल्यकी रह गई। शरीरकी ऊँचाई २००० धनुष या एक कोसकी रह गई। शरीरका रंग प्रियंगुके समान श्याम रंगका होगया। एक दिन पीछे आमलेके समान अमृतमई भोजन करके वे तृप्ति पालेते थे।

इस तरह तीसरा काल बीतते हुए जब एक पल्यका आठवां भाग समय शेष रहा तब कर्मभूमिकी रचनाके प्रवर्तानेवाले प्रतिश्रुति आदि चौदह कुलकर क्रमसे हुए। चौदहवें कुलकर श्री ऋषभदेवके पिता श्री नाभिराज हुए। नाभिराजाके समयतक मेघवृष्टि होने लगी। काले नीले जलसे भरे बादल घूमने लगे, बिजली कड़कने लगी, पवन चलने लगी, मेघोंकी गाज सुनकर मयूर नृत्य करने लगे। जलवृष्टि ऐसी हुई मानों कल्पवृक्षोंके क्षय होनेपर मेघोंने अश्रुपातकी धारा वर्षा दी। सूर्यकी किरणोंके व जलबिंदुओंके स्पर्शसे पृथ्वी अंकुरित होगई। द्रव्य, क्षेत्र, कालके निमित्तसे परिणमन होजाया करता है। धीरे२ खेतोंमें अन्न पकने लगा। वृक्षोंमें फल पक गए।

अतिवृष्टि व अनावृष्टि न होनेसे मध्यम वृष्टि होनेसे सर्व प्रकारके धान्य व फल पक गए। ईख, धान्य, जौ, गेहूं, अलसी, धनिया, कोदों, तिल, सरसों, जीरा, मूंग, उड़द, चने, कुलथी, कपास आदि सर्व ही पदार्थ जिनसे प्रजाका जीवन होसके फल गए। धान्य व फलादिके फलनेपर भी प्रजाको यह न जान पड़ा कि किस तरह उनका उपयोग करना चाहिये।

कर्मभूमिका आगमन।

चौथा काल आनेवाला है। कल्पवृक्षोंका क्षय होगया। प्रजाजन अपने प्राण रक्षणके लिये आकुलित होगए। क्षुधाकी वेदनासे आकुल होकर सर्व मानव श्री नाभिराजाको महापुरुष जानकर उनके सामने प्रार्थना करने लगे कि हे नाथ! हम अब कैसे जीवें। कल्पवृक्ष नष्ट होगए। कितने ही वृक्ष फल व धान्यसे नम्रीभूत खड़े हुए मानो हमको बुला रहे हैं। हम नहीं जानते हैं कि उनमेंसे किनको ग्रहण करना चाहिये व किनको छोड़ना चाहिये। इनका हम कैसे उपयोग करें सो सब विधि हमको बताइये।

आप महापुरुष हैं, ज्ञाता हैं, हम अज्ञानी हैं कर्तव्यमूढ़ हैं। हमको कृपा कर सब भेद समझाइये। तब नाभिराजाने संतोषित करके कहा कि कल्पवृक्षोंके जानेपर ये वृक्ष उत्पन्न हुए हैं, उनमेंसे अमुक२ विषवृक्ष हैं, हानिकारक हैं, उनके फल न ग्रहण करना चाहिये। इक्षुका रस निकालकर पीना चाहिये। धान्यको पकाकर खाना चाहिये। दयालु नाभिराजाने बर्तनोंके बनानेकी व पकानेकी

व भोजनकी सब विधि बताई। जो औषधियां थीं उनको भी समझा दिया। प्रजाके कल्याणके लिये नाभिराजा कल्पवृक्षके समान होगए। प्रजा सब विधि जानकर बड़ी सन्तोषित हुई और सुखसे प्राणयापन करने लगी। श्री नाभिराजा अकेले ही जन्मे थे, उनके समय जुगलियोंकी उत्पत्ति बन्द होगई थी। तब इन्द्रकी आज्ञासे देवोंने नाभिराजका विवाह मरुदेवीके साथ कर दिया। कहा है:-

तस्योद्वाहकल्याणं मरुदेव्या समं तदा।
यथाविधि सुराश्चक्रुः पाकशासनशासनात् ॥ ८१ ॥

देवोंने ही इन्द्रकी आज्ञासे देशोंकी सीमा बांधी; पत्तन, ग्राम, नगर नियत किये। अयोध्यापुरीकी बड़ी ही सुन्दर रचना करी। तबसे कर्मभूमिका कार्य प्रारम्भ होगया। कर्मभूमिके तीन काल हैं-चौथा, पांचमा, छट्ठा।

चौथे कालका वर्णन।

चौथा काल बयालीस हजार वर्ष कम एक कोड़ाकोड़ी सागरका है। चौथे कालकी आदिमें ही (नोट-हुंडावसर्पिणी कालके कारण जब तीन वर्ष ८॥ मास तीसरे कालके शेष रह गये थे तब ही श्री वृषभदेव मोक्ष पधारे थे) श्री वृषभदेव प्रथम तीर्थंकरने मोक्षमार्गको प्रगट किया। इस कालमें मानवोंकी उत्कृष्ट ऊंचाई ५२५ सवा पांचसौ धनुषकी थी। उत्कृष्ट आयु एक करोड पूर्वकी होती थी। ८४००००० चौरासी लाख वर्षका एक पूर्वांग व ८४ लाख पूर्वांगका एक पूर्व होता है। मध्यम व जघन्य आयु अनेक प्रका-

रकी होती थी जिसका वर्णन परमागमसे विदित होगा। जघन्य आयु एक अंतर्मुहूर्तकी होती थी। चौथे कालमें गर्भ, जन्म, तप, ज्ञान, मोक्ष पांचों कल्याणकोंमें पूजाको प्राप्त ऐसे चौबीस तीर्थंकर होते हैं। इनकेसिवाय कितने ही महात्मा अपनी काललब्धिके बलसे अतीन्द्रिय सुखको भोगते हुए निर्वाणको प्राप्त होते हैं। उन सर्वही निर्वाण प्राप्त सिद्धोंको हम नमन करते हैं। कितने ही महात्मा सम्यक्तपूर्वक महाव्रतोंको या देशव्रतोंको पालकर पहले स्वर्गसे लेकर सर्वार्थसिद्धि पर्यंत जाते हैं। कितने ही द्रव्यलिंगी मुनि चारित्रको पालकर सम्यक्तके बिना मिथ्यादृष्टी होते हुए भी पुण्य बांधकर नौग्रैवेयिक पर्यन्त जाते हैं।

कितने ही सम्यक्त व व्रत दोनोंसे रहित होनेपर भी भद्रपरिणामी पात्र दान करके भोगभूमिमें जाकर जन्म लेते हैं। कितने ही पहले तीर्यंच व मनुष्य आयु बांधकर पीछे सम्यग्दर्शनको पाते हैं और पात्रदानसे भोगभूमिमें जन्म लेते हैं। कितने ही भोगोंमें आसक्त रहते हैं, प्राणियोंपर दयासे वर्ताव नहीं करते हैं, धर्मसे विमुख रहते हैं, दुष्टभाव रखते हैं, वे नर्कमें जाकर दुःख भोगते हैं। मानवोंको दुष्टकर्म- पापकर्मका त्याग अवश्य करना चाहिये। क्योंकि पापका बन्ध होनेसे उसका कटुक फल भोगना पड़ेगा। जो नर जन्म व धर्म साधनेयोग्य सर्व उचित सामग्री पाकर भी धर्मसेवन नहीं करते हैं उनका यह सर्व योग्य समागम वृथा चला जाता है। फिर ऐसा नरजन्मका उत्तम धर्म साधन योग्य समागम मिलना बहुत कठिन है।

क्योंकि चौथे कालमें बंध व मोक्षका मार्ग चलता है, इसीलिये साधुओंने इसे कर्मभूमिका नाम दिया है। जैसा कहा है:—

इतीत्थं तुर्यकालोऽसौ पंथाः स्याद्वंधमोक्षयोः।
तस्मान्निगद्यते सद्भिः कर्मभूरितिनामतः॥ १७॥

इस चौथे कालमें बारह चक्रवर्ति, नौ नारायण, नौ प्रतिनारायण नौ बलभद्र भी होते हैं। जिस कालमें विना किसी बाधाके चौबीस तीर्थंकरोंको लेकर त्रेशठ शलाका पुरुष उत्पन्न होते हैं वही चौथा काल है। इस कालमें सर्व स्थानों पर महाव्रतधारी मुनि व देशव्रतधारी गृही श्रावक सदा दिखलाई पड़ते हैं। इस कालमें पूजा दानादि नित्यकर्ममें तत्पर व सदाचारी गृहस्थ दर्शन प्रतिमासे लेकर उद्दिष्ट त्याग प्रतिमा तक यथाशक्ति ग्यारह प्रतिमाओंको पालते हुए सदा मिलते हैं। जो ग्यारहवीं प्रतिमाके धारी व्रती श्रावक होते हैं वे गृहको त्यागकर मुनिके समान परम वैराग्य भावमें स्थिर रहते हैं। चौथे कालमें बालगोपाल सर्व प्रजाजन जैनधर्मको पालते हैं।

हुंडावसर्पिणी काल।

कभी भी अन्य किसी अजैन धर्मका प्रकाश नहीं होता है। किन्तु जब कभी हुंडावसर्पिणी काल आजाता है तब उस कालमें अनेक पाखंड मत चल पड़ते हैं व सत्य धर्मकी हानि होती है।

असंख्यात कोटिवार उत्सर्पिणी अवसर्पिणीके बीतने पर एक दफे हुंडावसर्पिणी काल आता है। ऐसी बात अनन्तवार पहले हो चुकी है व अनन्तवार आगे होगी। जैसे किसी वर्षमें एक

एक मास अधिकका मल मास होता है, वैसे ही इस हुंडाव-सर्पिणीकालको जानना चाहिये। इस हुंडावसर्पिणी कालमें बहुतसे अनर्थ होते हैं। कालचक्रकी मर्यादाको कोई रोक नहीं सक्ता। जैसे कालके स्वभावसे ही वर्षा ऋतुके पीछे शरद ऋतु आती है, वैसे कालके परिभ्रमणमें यह हुंडाकाल आता है। द्रव्योंका होना ही स्वभाव है। इस हुंडावसर्पिणी कालमें परमागमके अनुसार तीर्थंकर ऐसे महान आत्माओंको भी उपसर्ग होता है। चक्रवर्तीका मानभंग अपने ही कुटुम्बमें होता है। इत्यादि वचनसे अगोचर बहुत अनर्थ होते हैं। तब प्राणीवध रूप हिंसाका प्रचार होता है। जिससे तीव्र पापकर्मका बंध होता है। ब्राह्मण वर्ग इसी कालमें प्रगट होते हैं। अनिष्ट बुद्धिधारी ब्राह्मण यज्ञोंके लिये पशुओंकी की हुई हिंसासे पुण्यका लाभ व कल्याण होना बताते हैं।

इस प्रकरणके श्लोक हैं—

किंतु हुंडावसर्पिण्यां कालदोषादिह क्वचित्।
प्रादुर्भवंति पाखण्डास्तथापि च वृषक्षतिः॥ १०४॥
गतायामवसर्पिण्यामुत्सर्पिण्यां तथैव च।
असंख्यकोटिवारं स्यादेका हुंडावसर्पिणी॥ १०५॥
तद्यथा तत्र हुंडावसर्पिण्यां वा यथागमम्।
तीर्थेशामुपसर्गो हि महानर्थो महात्मनाम्॥ १०९॥
मानभङ्गश्च चक्रेशं जायते जातिपूर्वकः।
इत्यादि बहवोऽनर्थाः सन्ति वाचामगोचराः॥ ११०॥

हिंसा प्राणिवधश्चेयं दुष्कर्मार्जनकारणम् । सेन,
यागाय श्रेयसे हिंसा मन्यंते दुर्धियो द्विजाः ॥ २१ हांतक

इस कालमें प्रगटरूपसे ब्रह्म अद्वैतवादी मत प्रगट हो क्रमसे जो एक अद्वैत ब्रह्मको ही मानते हैं और अनेक द्रव्योंको नहीं मानते हैं। कितने ही एकांतमतवादी तत्वको सर्वथा नित्य ही कहते हैं, वे आकाशको व आत्मा आदिको सर्वथा नित्य मानते हैं। कितने ही क्षणिक एकांतवादी तत्वको सर्वथा क्षणिक ही मानते हैं जैसे शब्द व मेघादि। कितने ही कापालिक मतवाले पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश इन पांच तत्वोंको ही मानते हैं। वे जीवको नहीं मानते हैं। उनके मतमें बन्ध व मोक्षकी अवस्था नहीं होसक्ती है कितने ही अज्ञानी मोक्षका ऐसा स्वरूप मानते हैं कि वहां ज्ञानादि धर्मोंकी संतानका सर्वथा नाश होजाता है। इन मतोंके भीतर बहुतसे भेदरूप मत इस हुंडावसर्पिणी कालमें ही प्रचलित होते हैं, और किसी अवसर्पिणी कालमें नहीं होते हैं।

स्याद्वाद गर्भित श्री जिनेन्द्रकी वाणी द्वारा जैन सिद्धांत एकान्त मतोंका उसी तरह खंडन करता है जिसतरह वज्रपातसे पर्वत चूर्ण होजाते हैं। इन एकांत मतोंका खंडन आगे कहीं करेंगे। यहां उनका कुछ स्वरूप मात्र कहा गया है।

इस हुंडावसर्पिणी कालमें नाना भेष धारी साधु प्रगट होते हैं। कोई त्रिशूलादि शस्त्र लिये रहते हैं, कोई जटाओंको बढ़ाते हैं, कोई शरीरमें भस्मको लपेटते हैं, कोई एक दंडी, कोई दो दंडी, कोई

...डी होते हैं। कोई हंस व कोई परमहंस होते हैं जो वनमें ...म करते हैं। इस कालमें इतने साधुओंके भेष प्रचलित हो-...ते हैं कि उनका नाम मात्र भी कहा नहीं जासक्ता। इस कालमें ...जालोग भी पापमें रत दिखलाई पडते हैं। रोग पीडित साधु ...ए जाते हैं। ऐसा होनेपर भी परमार्थको पहचाननेवाले महात्मा-ओंका कर्तव्य है कि वे क्षण मात्र भी इस जैन धर्मको न भूलें। जैसे सुवर्ण अग्निमे तपाए जानेपर भी अपने स्वभावको नहीं छोडता है किंतु और भी निर्मल होजाता है वैसे ही सज्जन पुरुषोंका कर्तव्य है कि क्षुद्र पुरुषोंसे पीडित होनेपर भी वे कभी धर्मको न त्यागें। कहा है कि इस लोकमें अनेक जीव अपने २ बांधे हुए कर्मोंके वश नाना भावोंको रखने वाले हैं, उनके कुत्सित भावोंको देखते हुए भी योगियोंका मन क्षोभित नहीं होता है। वे समभावसे सत्य वस्तु स्वरूपको विचारकर अपना हित करते हैं। इसतरह चौथे कालकी कुछ विशेष कही है। अधिक वर्णन परमागमसे जानना योग्य है।

जब चौथे कालमें तीन वर्ष साढेआठ मास शेष रहे थे तब श्री वीर भगवानने निर्वाण प्राप्त कर लिया। उसके पीछे बासठवर्षमें तीन केवलज्ञानी मोक्ष पधारे—श्री गौतमस्वामी, सुधर्माचार्य और जम्बूस्वामी।

पञ्चमकाल वर्णन।

तीन केवलीके पीछे सो वर्षमें चौदह पूर्वोके पारगामी पांच श्रुतकेवली क्रमसे हुए—विष्णु नंदिमित्र, अपराजित, गोवर्द्धन और भद्रबाहु। उनके पीछे एकसो अस्सी वर्षमें क्रमसे दश पूर्वके ज्ञाता

ग्यारह मुनिराज हुए–विशाख, प्रोष्ठिल, क्षत्रिय, जयसा, नाग
सिद्धार्थ, धृतिषेण, विजय, बुद्धिमान्, अंगदेव, धर्मसेन। यह
आत्मा आदि तत्वोंका पूर्ण उपदेश होता रहा। उनके पीछे २
दोसौ वीस वर्षोंमें ग्यारह अंगके पाठी पांच मुनीश्वर हुए–नक्षत्र
जयमाल, पांडु, ध्रुवसेन व कंसाचार्य। इस समय तत्वोपदेशमें
कुछ हानि होगई। जैसे हाथकी हथेलीमें रखा हुआ पानी बूँद बूँद
करके गिर जाता है, फिर एकसौ अठारह वर्षोंमें क्रमसे प्रथम
अंगके पाठी पांच मुनि हुए-सुभद्र यशोभद्र, भद्रबाहु, महायश,
लोहाचार्य। इनके समयमें तत्वोपदेश एक भाग ही रह गया। आगे
आगे चलकर और भी तत्वोपदेश कम होगया। क्योंकि पंचम-
कालके दोषसे मानवोंकी बुद्धि हीन हीन होती चली गई।

इस दुषमा पंचमकालमें मानवोंकी आयु साधारणरूपसे एकसौ
बीस पर्यंतकी होजाती है। इस कालमें अप्रमत्त विरत सातवां गुण-
स्थान तक ही होती है। कोई साधु उपशम या क्षपकश्रेणी नहीं चढ़
सक्ता है न इस कालमें दोनों मनःपर्ययज्ञान होते हैं। देशावधि
तो होती है, परन्तु परमावधि व सर्वावधि नहीं होती है। तपकी
हानि होनेसे सब ऋद्धियां सिद्ध नहीं होती हैं। पंचकल्याणकोंके
न होनेसे देवोंका आगमन नहीं होता है। कहीं किसी समय कोई २
क्षुद्र देव किसी कारणसे आते हैं, ऐसा जिनागममें कहा है। उत्कृष्ट
आयु १२० वर्षकी होती है। शरीरकी ऊंचाई एक धनुषकी या
चार हाथकी होती है। जैसे २ काल बीतता है, मानवोंकी आयु

घटती जाती है, धर्मका भी कहीं२ अभाव होजाता है। इस कालमें उपशम तथा क्षयोपशम दो ही सम्यक्त बाधा रहित होसकते हैं। केवलियोंके न होनेसे क्षायिक सम्यक्त नहीं होसकता है। एक अन्य ग्रंथकी गाथामें कहा है कि पहले कालमें उपशम सम्यक्त ही होती है और सर्व कालोंमें पहला उपशम व दूसरा क्षयोपशम सम्यक्त दो होते हैं। क्षायिक सम्यक्त तब ही होता है जब श्री जिनेन्द्र केवली होते हैं। यहां कुछ श्लोक उपयोगी हैं:—

ततः श्रेण्योरभावः स्यात्तमनःपर्ययबोधयोः।
देशावधिं विना परमसर्वावधबोधयोः॥ १४२॥
ऋद्धीणां चापि सर्वासामभावस्तपसः क्षतेः।
नापि देवागमस्तत्र कल्याणामनाभावतः॥ १४३॥
कदाचित् कुत्रचित् केचित् क्षुद्रदेवाः कथंचन।
आगच्छंति पुनस्तत्र सद्भिः प्रोक्तं जिनागमे॥ १४४॥

गाथा—पढमं पढमे णियदं पढमं विदियं च सव्वकालेसु।
खाइयसम्मत्तो पुण जत्थ जिणो केवली तम्हि॥ १॥

इस दुखमा पंचमकालमें महाव्रत और अणुव्रत दोनोंका पालन होसकता है, परन्तु अप्रमत्तविरत सातवें गुणस्थानके ऊपर गमन नहीं होसकता है। जो कोई भद्र परिणामी हैं व दया धर्म व दानमें तत्पर रहते हैं, शील तथा उपवास पालते हैं, वे निरंतर स्वर्ग भी जाते हैं। इत्यादि कार्य जिस कालमें होते हैं वह दुखमा काल है ऐसा आसका उपदेश है।

छठे कालका आगमन ।

इस पंचमकालके अन्तमें जो व्यवस्था होती है, वह भी कुछ वर्णन की जाती है। इस पंचमकालके बीतनेपर दुखमा दुखमा नामका छठा काल आता है, उसका भी कुछ कथन किया जाता है। पंचमकालके अन्तमें किसी देशका कलंकी राजा हाकाहल विषके समान धर्मका घातक प्रगट होता है। उसका भी सर्व व्यवहार प्रजाको पीड़ाकारी होता है। उस समय तक सर्व सुवर्णादि धातुएं विला जाती हैं। चमड़ेका सिक्का चल जाता है उसीसे ही माल खरीदा व वेचा जाता है। वह दुष्ट राजा प्राणियोंके बांधने व मारनेके ही वचन बोलता है। जैनधर्म तबतक बराबर चलता रहता है। क्योंकि उस समय भी एक भावलिंगी मुनि, एक आर्यिका, एक जैन श्रावक, एक श्राविका मिलते हैं। कहा है—

अथ तत्रापि वृषः साक्षादव्युच्छिन्नप्रवाहतः ।
यस्मादेको मुनिर्जैनो विद्यते भावलिंगवान् ॥१५७॥
एका चाप्यर्जिका तत्र यथोक्तव्रतधारिका ।
सजानः श्रावकश्चैको जैनधर्मपरायणः ॥१५८॥

भावार्थ-वह कलंकी पापी राजा किसी दिन विचारता है व कहता है-क्या कोई मेरी आज्ञासे विरुद्ध है? मुझे कर नहीं देता है? ऐसा सुनकर कितने अधम पुरुष कहते हैं कि-महाराज! एक जैनका मुनि है जो आपको कर नहीं देता है। कहा है—

राज्ञि धर्मिणि धर्मिष्ठाः पापे पापाः समे समाः ।
लोकास्तदनुवर्तंते यथा राजा तथा प्रजाः ॥ १६१ ॥

भावार्थ—यदि राजा धर्मात्मा होता है तो प्रजा धर्मात्मा होती है, यदि राजा पापी होता है तो प्रजा पापी होती है, यदि राजा समान होता है तो प्रजा समान होती है। लोग राजाका अनुकरण करते हैं। जैसा राजा होता है वैसी प्रजा होती है।

ऐसा सुनकर वह राजा निर्दयी वचन कहता है कि जिसतरह जैन मुनिसे दण्ड लिया जाय वैसा उपाय करना योग्य है। राजाकी आज्ञा पाकर राजाके कुछ नौकर उन जैन मुनिके पीछे जाते हैं। जब वह भिक्षाके लिये भूमि निरख कर चलते हैं। जब वे पवित्रात्मा किसी श्रावकके घरमें निकट पहुंचते हैं और वह श्रावक नमोऽस्तु कहकर मुनिका पड़गाहन करके विधिके साथ भीतर लेजाकर व भक्ति पूजा करके दान देनेको खड़ा होता है और मुनि शुद्ध भावसे अपने करमें जैसे भोजनका ग्रास लेते हैं वैसे राजाके नौकर वज्रमई कठोर वचन कहते हैं कि तुम इस तरह भोजन नहीं कर सके। राजाकी आज्ञा है कि पहला ग्रास राजाको करके रूपमें प्रतिदिन देना होगा। इतना सुनते ही आगमके ज्ञाता मुनि पंचमकालकी अंतिम अवस्थाका विचार करते हैं और निश्चय करते हैं कि यह पंचमकालका अंत समय है। इसीलिये ऐसा अनर्थ होरहा है। शास्त्रके ज्ञाता मुनि उस आहारके ग्रासको छोड़ देते हैं और मुनि धर्मका चलना असम्भव जानकर सावधानीसे जीवन पर्यंत चार प्रकारके आहारका त्याग करके समाधिमरण धारण करते हैं। तब आर्यिका भी सर्व आहार त्याग कर सावधान हो

समाधिमरण धारण करती है। अपनी धर्मपत्नी सहित श्रावक भी मुनिके समान संसार शरीर भोगोंसे विरक्त हो समाधिमरण स्वीकार कर लेते हैं। चारों ही सम्यक्ती महात्मा शरीरको त्यागकर स्वर्गमें देव उत्पन्न होते हैं। पश्चात् उस कलंकी राजाके ऊपर भी बिजली गिरती है। उसकी शय्या व गृह आदि सर्व नाश होजाता है। उसी क्षणसे ही दही, दूध, घी आदि विला जाता है। जैसे पापके उदयसे सम्पदा विला जाती है।

छठे कालका वर्णन।

उस समयसे दुखमा दुखमा नामका छठा काल प्रारम्भ होजाता है। उस समय भोग सामग्री नाश होजाती है। तब उत्कृष्ट आयु सोलह वर्षकी रह जाती है। मानवोंके शरीरकी उत्कृष्ट ऊँचाई एक हाथ ही होजाती है। मध्यम व जघन्य आयु व ऊँचाई आगमसे जानना योग्य है। पशुओंकी भी आयु व शरीरकी ऊँचाई आगमसे जानना चाहिये। इस कालमें मनुष्य तथा पशु सब दुखोंसे पीड़ित होते हैं। फल आदिका आहार करते हैं। भूमिके बिलोंमें रहते हैं। मनुष्य वृक्षकी छालके कपड़े पहनते हैं। परस्पर विरोध रखते हैं। पशु भी महान दुष्ट होते हैं। रात दिन लड़ते रहते हैं। पापी व निर्दयी प्राणी धर्मबुद्धिके अभावसे व दुष्ट कालके प्रभावसे एक दूसरेको मार करके फल खाते हैं। वर्षभरमें वर्षा कभी कहीं होती है। प्राणियोंमें तृष्णा इतनी बढ़ जाती है कि कभी वह शांत नहीं होती है। पापकर्मके उदयसे इसतरह छठे कालके प्राणी बड़े कष्टसे इकीश-हजार वर्ष पूर्ण करते हैं।

४९ दिन प्रलय होना।

छठे कालके अंतमें कालके प्रभावसे इस आर्यखण्डमें प्रलय होती है। सात सात दिनतक क्रमसे अग्नि, रज आदिकी वर्षा होती है। इसतरह लगातार उनचास दिन तक महान कष्टदायक भयंकर उपद्रव होता है। उस क्षेत्रके रक्षक देव बहत्तर जोडोंको स्त्री पुरुष सहित लेजाकर गुफा आदिमें रख देते हैं।

इस आर्यखण्डमें शेष सब कृत्रिम रचना भस्म होजाती है। अकृत्रिम रचना बनी रहती है। उसे कोई नाश नहीं कर सक्ता है। चित्रा पृथ्वी नित्य बनी रहती है। इस तरह अनंतवार कालके परिवर्तनमें छठे कालके अंतमें प्रलय होचुकी है। कहा है—

द्वासप्ततिजीवानां दंपतीमिथुनं तदा।
तत्राधिकारिभिर्देवैर्नीयंते गह्वरादिषु ॥ १८७ ॥
शेषमत्रार्यखण्डेऽस्मिन् कृत्रिमं भस्मसाद्भवेत्।
अकृत्रिमं तु केनापि कर्तुं शक्यं न वान्यथा ॥१८८॥

इसप्रकार भरतक्षेत्रमें अवसर्पिणीके छःकाल, फिर विरोध क्रमसे उत्सर्पिणीके छःकाल वर्तते रहते हैं।

मगधदेश वर्णन।

ऐसे भरतक्षेत्रमें मगधदेश पृथ्वीमें प्रसिद्ध बसता है। जिस देशकी प्रजा भोग सम्पदासे नित्य प्रसन्न है व जहां सदा उत्सव होते रहते हैं। जिस देशमें मेघोंकी वर्षा सदा हुआ करती है। यहां कभी अतिवृष्टि, अनावृष्टि आदि ईतियां नहीं होती हैं, न वहां

अनीतिका प्रचार है। राजाओंके द्वारा प्रजाको करकी बाधा नहीं पहुंचाई जाती है। वहां सदा सुकाल रहता है। वहांके खेत धान्यसे व वृक्षफलोंसे सदा फलते रहते हैं। फलोंसे लदे हुए वृक्षोंसे मंद मंद सुगंध आती है। पथिकगण इसके रसको इच्छानुसार पीते हैं। जहांके कूप व सरोवर जलसे भरे हुए हैं व मनुष्योंके आतापको हरते हैं। वापिकाएं निर्मल जलसे भरी हुई मानवोंकी तृषाको बुझाती हैं। जिनके तटोंपर वृक्षोंकी छाया होरही है। वृक्षोंने सूर्यके आतापको रोक रखा है।

जिस देशमें बड़ी नदियां स्वच्छ जलसे पूर्ण कुटिलतासे दूरतक बहती थीं, जिससे सर्व मानव व पशुपक्षी लाभ उठाते थे।

झीलोंके तटोंपर हंस कमलकी दंडीके साथ कल्लोल कर रहे थे। वनोंमें बड़े २ मस्त हाथी विचर रहे थे। जहां बड़े २ दृढ़ वृषभ जिनके सींगोंमें कर्दम लगा है, थल कमलोंको देखकर पृथ्वीको खोद रहे थे। इस देशमें स्वर्गपुरीके समान नगर थे। कुरुक्षेत्रकी सड़कोंके समान चौड़ी सड़कें थीं। स्वर्गके विमानोंके समान सुन्दर घर थे व देवोंके समान प्रजा सुखसे वास करती थी। उस देशमें कहीं भंग उपद्रव न था। यदि भंग था तो जलकी तरंगोंमें था। प्रजामें मद न था, मद था तो हाथियोंमें था। दंड देना नहीं पड़ता था, दंड कमलोंमें था। सरोवरोंमें ही जलका समूह था, कोई नगर जलमग्न नहीं होता था। गाएं ठीक समयपर गाभिन होती थीं। जैसे मेघोंसे जल मिलता है वैसे गायोंसे मनुष्योंको दूध

मिलता था। उसको पीकर लोग हृष्टपुष्ट रहते थे। मगध देशकी स्त्रियां स्वभावसे ही सुन्दर थीं। पुरुष स्वभावसे ही चतुर थे। जहां घर घरमें कन्याएं स्वभावहीसे मिष्टवादिनी थीं।

मगध देशके लोग श्री अरहंतोंकी पूजामें व पात्रदानमें बड़ी प्रीति रखते थे। ब्रह्मचर्य पालनेमें बड़े शक्तिशाली थे। अष्टमी, चौदशको प्रोषधोपवास करनेमें रुचिवान थे। कहा है—

यत्र सत्पात्रदानेषु प्रीतिः पूजासु चार्हताम्।
शक्तिरात्यंतिकी शीले प्रोषधे च रतिर्नृणाम्॥ १०८॥

नोट–इससे कविने यह दिखलाया है कि मगधदेशमें जैन धर्मका दीर्घकालसे प्रचार था। गृहस्थ लोग श्रावकोंके नित्यकर्ममें सावधान थे तथा सारा देश बड़ा सुखी था। प्रजा आनन्दमें समय विताती थी।

राजगृही नगर वर्णन।

इस मगध देशके एक भागमें राजगृही नगरी शोभायमान थी। जहांके राजसुभट इन्द्रके समान सदा शोभते थे। इस नगरके बड़े बड़े प्रासादोंके ऊपर तपाए हुए सुवर्णके कलश शोभते थे। जिससे नगरनिवासियोंको आकाशमें सैकड़ों चंद्रमाओंके चमकनेकी भ्रांति होती थी। वहां शिखरबंद श्री जिनमंदिर थे, जिनपर दण्ड सहित पताकाएं हिल रही थीं, जिनसे ऐसा मालूम होता था कि आकाशमें गंगा नदीके सैकड़ों प्रवाह बह रहे हैं।

महलोंकी खिड़कियोंमें या झरोखोंमें सुन्दर स्त्रियां अपना

मुख बाहर निकाले हुए बैठी थीं। ऐसा विदित होता था कि झरोखोंमें कमल खिल रहे हैं। वहांकी नारियोंकी सुंदरता देखते देखते देवियां चकित होती थीं। इसीलिये मानो उनके नेत्रोंको कभी पलक नहीं लगती थी।

(नोट–देवदेवियोंके कभी पलक नहीं लगती। नेत्र सदा खुले रहते हैं। निद्रा नहीं आती) उस नगरमें नित्य नृत्य व गीत वादित्रकी ध्वनि होती थी। सुगंधित धूपका धूआं फैला रहता था। जिससे मयूरोंको मेघोंकी गर्जनाका भ्रम होता था और वे मोर ध्वनि करने लगते थे।

श्रेणिक महाराजका वर्णन।

उस राजगृहनगरमें राजाओंके राजा महाराज श्रेणिक राज्य करते थे जो बड़े बुद्धिमान् थे। अनेक भूपाल उनके चरणोंको मस्त नमाते थे। राजा श्रेणिकके शरीरमें सर्वही लक्षण शुभ थे, जिनका वर्णन करना कठिन है, तौ भी सामुद्रिकशास्त्र ज्ञानके लिये कुछ लक्षण कहे जाते हैं। राजाके शिरपर नीले व घूघरवाले बाल ऐसे शोभते थे मानों कामदेव रूपी काले सर्पके बच्चे ही प्रगट हुए हैं। भ्रमरके समान नेत्र थे, मुख कमलके समान था। जब राजा युद्ध करते थे उनके मुखके भीतरसे किरणें चारों तरफ फैल जाती थीं। वाणी बड़ी ही मधुर थी, फूलके रससे भी मीठी थी। राजाके दोनों नेत्र कर्ण तक लम्बे शोभते थे। उन नेत्रोंने सत्य शास्त्रोंका ही आश्रय लिया है। वे सिखारहे हैं कि बुद्धिमानोंको सत्य श्रुतको ही सीखना

चाहिये। राजाके कंठमें हार ऐसा शोभता था मानों ओसकी बूंद ही हों या मानों तारागणोंको लेकर चंद्रमा ही राजाकी सेवाके लिये आगया है। राजाके चौड़े वक्षस्थलमें चंदन चर्चा हुआ था। मानों सुमेरु पर्वतके तटपर चंद्रमाकी चांदनी छाई हुई है।

राजाके सिरके ऊपर मुकुट मेरुके समान शोभता था, मानों मेरुके दोनों तरफ नील व निषध पर्वत ही हों। यहां नील पर्वतके समान केशोंका भाग व निषिधके समान मुखका अग्रभाग तपाए सुवर्णके समान था। राजाके शरीरके मध्यमें नाभि नदीके आवर्तके समान गंभीर थी। मानो कामदेवने स्त्रीकी दृष्टि रोकनेको एक जलकी खाई ही खोद दी हो। राजाकी कमरका मंडल सुवर्णकी कर्धनीसे व कमरबंधसे वेष्ठित था, मानो जम्बूवृक्षके चारों तरफ सुवर्णकी वेदी खड़ी की गई है। दोनो जंघाएं स्थिर, गोल व संगठित थीं, मानों स्त्रियोंके मनरूपी हाथीके बांधनेके लिये स्थंभके समान थीं। दोनो चरण लाल थे व बड़े कोमल थे, वे जलकमलके समान शोभित थे, जिनमें लक्ष्मीने निवास किया था। राजा श्रेणिकके पास शास्त्ररूपी संपदा भी रूपसंपदाके समान ऐसी शोभायमान थी जिससे देखनेवालोंको शरदकालके चंद्रमाकी मूर्तिके देखनेके समान आनंद होता था। जैसा राजाका रूप सुखप्रद था वैसे ही उसका शास्त्रज्ञान आनन्ददाता था। राजाकी बुद्धि सर्व शास्त्रोंमें दीपकके समान प्रवीणतासे प्रकाश करती थी। वह शास्त्रोंके पद व वाक्योंके समझनेमें बहुत चतुर थी। राजा श्रेणिक मधुरभाषी था, सुन्दर तनधारी था,

विनयवान था, जितेन्द्रिय था, सन्तोषी था तथा राज्यलक्ष्मीको वश रखनेवाला था। श्रेणिक राजाको विद्याका प्रेम था, कीर्तिका भी अनुराग था वादित्र बजानेका राग था। उसके पास लक्ष्मीका विस्तार था, विद्वान लोग उसकी आज्ञाको माथे चढ़ाते थे।

राजा श्रेणिक ऐसा प्रतापी था कि उसके प्रतापकी अग्निकी ज्वालासे अभिमानी शत्रु क्षणमात्रमें इसतरह ठंडे होजाते थे जैसे आगके लगनेसे तिनके भस्म होजाते हैं। जैसे कमलकी सुगंधसे खिंचे हुए भौंरे कमलकी सेवा करते हैं वैसे बड़े बड़े राजा महाराजा श्रेणिकके चरणोंको सदा प्रणाम करते थे।

इसी राजाने पहले मिथ्यात्व अवस्थामें अज्ञानसे एक जैन मुनिराजको उपसर्ग किया था, तब तीव्र संक्लेशमई भावोंसे सातवें नर्ककी आयु बांधली थी। वही बुद्धिमान् श्रेणिक पीछे काललब्धिके प्रसादसे विशुद्ध भावधारी होकर क्षायिक सम्यग्दर्शनका धारी होगया। वह शीघ्र ही कर्मोंको नाश करनेवाला भावी उत्सर्पिणीकालमें प्रथम तीर्थंकर होगा। श्रेणिक राजाका सब वृत्तान्त अन्य कथा-ग्रन्थोंमे जानना चाहिये, यहां विस्तारभयसे संक्षेपमात्र ही कहा है।

धर्मात्मा रानी चेलना।

राजा श्रेणिककी धर्मपत्नी चेलना रानी पतिव्रता, व्रत, शील व धर्मसे पूर्ण सम्यग्दर्शनको धारनेवाली थी। यद्यपि अन्य अनेक स्त्रियां राजाके अंतःपुरमें थीं, परन्तु श्रेणिक चेलनाके सहवासमें ही अपनेको अर्धांगिनी सहित मानता था। वह चेलना रूप,

यौवन, सुंदरता, व गुणोंकी नदी थी। जैसे नदी समुद्रकी तरफ जाती है वैसे यह अपने भर्तारकी आज्ञानुकूल चलनेवाली थी। जैसे कल्पवृक्षमें लगी हुई कल्पवेल शोभती है वैसे यह चेलना रति कार्यमें अपने भर्तारसे संलग्न हो शोभती थी।

श्री महावीर विपुलाचल पर।

एक दिन सभाके भीतर नम्रीभूत राजाओंसे सेवित महाराजा श्रेणिक सिंहासनपर विराजमान थे। जैसे सुमेरु पर्वतपर झरनें पड़ते हुए शोभते हैं वैसे राजापर ढुरते हुए चमर चमक रहे थे। चन्द्र-मण्डलके समान सिरपर सफेद छत्र शोभता था। उस समय वनके मालीने आकर महाराजके दर्शन किये। प्रणाम करके विनय सहित निवेदन करने लगा कि हे देव! मैंने अपनी आंखोंसे प्रत्यक्ष कुछ आश्चर्यभरी घटनाएं देखी हैं, उन सर्वका थोड़ासा भी वर्णन मैं नहीं कर सक्ता हूं। तौभी हे महाराज! कुछ अवश्य कहने योग्य कहता हूं—

इसी विपुलाचल पर्वतके मस्तकपर तीन जगतके गुरु महान् **श्री वर्द्धमान तीर्थंकरका** समवसरण विराजमान है। मैं उस सम-वसरणकी शोभा क्या कहूं! जहां स्वर्गके देवोंके समूह नौकरोंकी तरह भक्ति व सेवा कर रहे हैं। स्वर्गवासी देवोंके विमानोंमें क्षोभित समुद्रकी ध्वनिके समान घंटोंके शब्द होने लगे। ज्योतिषी देवोंके विमानोंमें महान् सिंहनाद कासा शब्द होने लगा, जिससे ऐरावत हाथीकी मद दूर होजावे। व्यंतरोंके घरोंमें मेघोंकी गर्जनाको दूर

करता हुआ दुंदुभि बाजोंका शब्द होने लगा तथा धरणेंद्रोंके या भवनवासियोंके भवनोंमें शंखकी महान ध्वनि हुई।

चार प्रकारके देवोंने जब यह ध्वनि सुनी, इन्द्रोंके आसन कांपने लगे। भगवानको केवलज्ञान हुआ है, इस विजयको वे आसन सहन न कर सके। कल्पवृक्ष हिलने लगे, उनसे पुष्पोंकी वर्षा होने लगी, सर्व दिशाएं निर्मल झलकने लगीं, आकाश मेघरहित स्वच्छ भासने लगा, पृथ्वी धूलरहित होगई, शीत व सुहावनी हवा चलने लगी। जब केवलज्ञान रूपी चंद्रमा पूर्ण प्रगट हुआ तब जगतरूपी समुद्र आनन्दमें फूल गया। इसी समय सौधर्म इन्द्र कल्पित देवकृत ऐरावत हाथीपर चढ़कर विपुलाचल पर्वतपर आया।

अभियोगजातिके देवने ऐसा मनोहर हाथीका रूप धारण किया कि उसके बत्तीस मुख थे व एक एक मुखमें आठ आठ दांत थे, एक२ दांतपर एक एक कमलिनीके आश्रय बत्तीस बत्तीस कमलके फूल थे, एक एक कमलके बत्तीस बत्तीस पत्ते थे, उन पत्तोंमेंसे हरएक पत्तेपर बत्तीस बत्तीस देवांगना नृत्य कररही थीं। उनका नृत्य अद्भुत था। ऐरावत हाथीपर चढ़ा हुआ इन्द्र था। उसके आगे किन्नरी देवियां मनोहर कंठसे श्री जिनेन्द्रका जयगान कर रहीं थीं। बत्तीस व्यंतरेन्द्र चमर ढार रहे थे, सरपर मनोहर छत्र था, अप्सरा देवियें मनोहर शोभाके लिये साथमें चल रही थीं, आकाशमें देवी-देवोंके द्वारा नील, रक्त आदि रङ्ग छारहे थे। ऐसा मालूम होता था कि आकाशमें संध्याकालका समय छाया हुआ है। देवोंकी सेना पूजाकी सामग्री

लिये हुए आकाशमें चलती हुई ऐसी झलकती थी कि देवोंकी सेनारूपी समुद्रमें अनेक तरंगें उठ रही हैं। इन्द्रादि देवोंने दूरसे समवसरणको देखा। इसे देव शिल्पियोंने बड़ी भक्तिसे निर्माण किया था।

इस समवसरणकी चौड़ाई एक योजन (४ कोस) थी। यह इन्द्रनीलमणिकी भूमिसे शोभित था। यह समवसरण इन्द्रनीलमणिसे रचा हुआ गोल था। मानो तीन जगतकी स्त्रियोंके मुख देखनेका दर्पण ही है। जिस समवसरणको इन्द्रकी आज्ञासे देवोंने रचा हो उसकी शोभाका वर्णन कौन करसक्ता है? प्रथम धूलीशाल कोट है जो पांच वर्णके रत्नोंसे बना है। उसके चारों तरफ सुवर्णके ऊंचे स्तंभ हैं, जिसके तोरणोंमें रत्नमालाएं लटक रही हैं। फिर कुछ दूर जाकर गलियोंके मध्यमें सुवर्ण रचित ऊंचे मानस्तंभ हैं। जिनको दूरसे देखनेपर मानियोंका मान गल जाता है। (यहां एक अन्य ग्रंथका श्लोक है जिसका भाव है कि) मानस्थंभोंके आगे चलकर सरोवर है। निर्मल जलकी भरी वापिका है। फिर पुष्पोंकी वाटिकाएं हैं, फिर दूसरा कोट है, नाट्यशाला है, उपवन है, वेदियोंपर ध्वजाएं शोभायमान हैं, कल्पवृक्षोंका वन है, स्तूप है, महलोंकी पंक्तियें हैं, फिर स्फटिक मणिका कोट है, उससे आगे श्री मंडप है वहां बारह सभाएं हैं, जहां देव, मनुष्य, पशु, मुनि आदि विराजते हैं, मध्यमें पीठ है उसके ऊपर स्वयंभू अरहंत तीथकर विराजते हैं। यह पीठ या चबूतरा तीन कटनीदार है। मणियोंकी शोभासे शोभित है। भगवान्‌के ऊपर चलते हुए चमरोंकी प्रतिबिम्ब पड़ती है

तब ऐसा मालूम होता है कि इन कटनियोंपर हंस ही बैठे हैं।

आठ मंगलद्रव्यकी सम्पदा शोभायमान है। ये मंगलद्रव्य जिनेंद्रके चरणकमलोंके निकट रहनेसे पवित्र हैं व गंगाके फेन समान निर्मल स्फटिक मणिसे निर्मापित हैं। तीन कटनीदार पीठ पर गंध-कुटी है, जिस पर तीन लोकके नाथ बिराजमान हैं। यह पीठ ऐसा शोभता है मानों देवलोकके ऊपर सर्वार्थसिद्धिके समान है। इस पीठके नीचे सुगंधित धूपके घट मालाओंसे शोभित बिराजित हैं। उस गंधकुटीके मध्यमें रत्नमई सिंहासन मेरुशिखरको तिरस्कार करता हुआ शोभता है। उस सिंहासनपर अंतिम तीर्थंकर श्री महावीर भगवान चार अंगुल ऊंचे अधर अपनी महिमासे बिराजमान हैं। कहा है—

विष्टरं तदलंचक्रे भगवानंततीर्थकृत्।
चतुर्भिरंगुलैः स्वेन महिम्ना पृष्ठतत्तलम्॥ २८९॥

आठ प्रातिहार्य।

इन्द्रादि देव बड़ी भक्तिसे पूजा कर रहे हैं। आकाशसे मेघ-धाराके समान फूलोंकी वर्षा होरही है। भगवान्के पास आठ प्रातिहार्य शोभायमान हैं। अशोक वृक्ष वायुसे अपनी शाखाओंको हिलाता हुआ व सूर्यके आतापको रोकता हुआ भगवानके पास शोभ रहा है। चंद्रमाकी चांदनीके समान धवल तीन छत्र शोभायमान हैं, मानों चंद्रमा तीन रूप बनाकर तीन जगतके गुरुकी सेवा कररहे है। यक्षों द्वारा ढोरे हुए चमरोंकी पंक्तियां क्षीरसमुद्रकी तरङ्गोंके समान शोभ रही हैं। भगवानके शरीरकी चमकमें पड़ती हुई ऐसी

मालूम होती है, मानों शरदकालके चंद्रमाकी चांदनी ही फैली हो। आकाशमें देवदुंदुभी बाजे ऐसी मधुर ध्वनिसे बज रहे हैं कि मोरगण मेघोंके आनेकी शंकासे मदसे पूर्ण हो राह देख रहे हैं।

भगवानकी देहका प्रभामंडल बड़ा ही शोभायमान है, जिसके प्रकाशसे स्थावर जंगम जगत मानो झलक रहा है। भगवानके मुख-कमलसे मेघकी गर्जनाके समान दिव्यध्वनि प्रगट होरही है, जिससे भव्य जीवोंके मनके भीतरका मोह-अंधकार नाश होरहा है, जैसे प्रकाशसे अंधकार दूर होजाता है।

हे महाराज! इसतरह आठ प्रातिहार्योंसे शोभित व अनेक देवोंसे सेवित श्री **वर्द्धमान जिनेन्द्र** विपुलाचल पर्वतपर विराजित हैं। उनके विराजनेका ऐसा महात्म्य है कि जिनका जन्मसे वैरभाव है ऐसे विरोधी पशु पक्षियोंने भी परस्पर वैरभाव त्याग दिया है। शांतिसे सिंह मृग आदि पास पास बैठे हैं। जिनका किसी कारणसे इस शरीरमें रहते हुए परस्पर वैरभाव होगया था वे भी भगवानके निकट आकर वैरभाव छोडकर शांतिसे तिष्ठे हुए हैं। महाराज! हस्तिनी सिंहके बालकको दूध पिला रही है। मृगोंके बालक सिंह-नीको माताकी बुद्धिसे देख रहे हैं। महाराज! वहां सर्पोंके फणोंपर मेढक निःशंक बैठे हैं, जिसतरह पथिकजन वृक्षोंकी छायामें आश्रय लेते हैं।

महाराज! सर्व ही वृक्ष सर्व ही ऋतुके पत्तोंसे व फलोंसे फल रहे हैं और आनंदके मारे लम्बी शाखाओंको हिलाते हुए नृत्य कर

रहे हैं। खेतोंमें बडे स्वादिष्ट धान्य पक रहे हैं। सर्व प्रकारकी सर्व रोगनाशक व पौष्टिक औषधियां प्रजाके सुखके लिये प्रगट होरही हैं। भगवानके प्रतापसे दुर्भिक्ष आदि संकट इसीतरह मूलसे नाश हो गए हैं जैसे सूर्यके उदयसे अंधकार विला जाता है। हे महाराज! श्री महावीर जिनेन्द्रके विराजनेसे एकसाथ इतने चमत्कार हो रहे हैं कि मैं इस समय कहनेको असमर्थ हूं।

श्रेणिकका वीर समवसरणमें आना।

इस तरह वनपालके मुखसे सुखप्रद वचन सुनकर महाराज श्रेणिकका शरीर आनन्दरूपी अमृतसे पूर्ण होगया। इसी समय श्री जिनेन्द्रकी भक्तिके भावसे सिंहासनसे उठकर भगवानके सम्मुख मुख करके सात पग चलकर श्रेणिकने तीन दफे नमस्कार किया। तथा अपने सर्व परिवारको लेकर श्री महावीर भगवानकी पूजाके लिये जानेकी तय्यारी करने लगा। भक्तिभावसे पूर्ण होकर धर्मकी प्रभावनाके लिये बड़े ठाठबाटसे वंदनाके लिये चला। सेनाको साथ लिया उसका क्षोभ हुआ, आनंदप्रद बाजोंकी ध्वनि सब दिशाओंमें छागई। हाथी, घोड़े, रथ, पैदलोंकी सेना साथ थी। हजारों ध्वजाएं दूरसे चमकती थीं। महान साज-सामानके साथ महाराज श्रेणिक समवसरणमें पहुंचे। वह समवसरण सूर्य मंडलकी प्रभाको जीतनेवाला शोभायमान होरहा था। प्रथम ही मानस्थंभोंकी प्रदक्षिणा देकर पूजा की। फिर समवसरणकी शोभाको क्रमशः देखते हुए महान आश्चर्यमें भर गया।

श्री मंडपके वहां पहुंचा, धर्मचक्रकी प्रदक्षिणा दी, पीठकी पूजा की, फिर गंधकुटीके मध्यमें सिंहासनपर उदयाचलपर सूर्यके समान विराजित श्री जिनेन्द्रका दर्शन किया। जिनेन्द्र पर चमर ढर रहे थे। भगवान आठ प्रातिहार्य सहित विराजमान थे। तीन लोकके प्रभु जिनेश्वरदेवकी गंधकुटीकी तीन प्रदक्षिणा दी, फिर बड़ी भक्तिसे श्री जिनेन्द्रकी पूजा की। पूजाके पीछे बड़े भावसे स्तुति की। उस स्तुतिका भाव यह है-आपको नमस्कार हो, नमस्कार हो, नमस्कार हो। आप दिव्यवाणीके स्वामी हैं, आप कामदेवको जीतनेवाले हैं, पूजनेयोग्य हैं, धर्मकी ध्वजा हैं, धर्मके पति हैं, कर्मरूपी शत्रुओंके क्षय करनेवाले हैं, आप जगतके पालक हैं, आपका सिंहासन महान शोभायमान है, आपके पास अशोक वृक्ष शाखाओंसे हिलता हुआ, ऊंचा व आश्रय करनेवालोंको छाया देता हुआ विराजमान है। यक्ष भक्तिसे चमर ढारते हुए मानो भक्तजनोंके पापोंको उड़ा रहे हैं। स्वर्गपुरीसे पुण्यकी वृष्टि होरही है, मानो स्वर्गकी लक्ष्मी हर्षके मारे अश्रुबिंदु क्षेपण कर रही है। आकाशमें देवदुंदुभि बाजे बजते हैं। मानो आपकी जयघोषणा कर रहे हैं कि आपने सर्व कर्मशत्रुओंको विजय किया है। आपमें शुद्ध ज्ञान, दर्शन, वीर्य, चारित्र, क्षायिक सम्यग्दर्शन, अनंतदानादि लब्धियां हैं। मोतियोंसे शोभित आपके ऊपर तीन छत्र विराजित हैं जो आपके निर्मल चारित्रको प्रगट कर रहे हैं। आपके शरीरका प्रभामण्डल फैला हुवा है, मानो आपका पुण्य आपको अभिषेक

कर रहा है। आपकी दिव्यध्वनि जगतके प्राणियोंके मनको पवित्र करती है। आपका ज्ञान सूर्यका प्रकाश मोहरूपी अंधकारको दूर कर रहा है।

आपका ज्ञान अनंत है, अनुपम है व क्रमरहित है। आपका सम्यग्दर्शन क्षायिक है, सर्व विश्वको जानते हुए भी आपको किंचित् खेद नहीं होता है। यह आपके अनंत वीर्यकी महिमा है। आपके भावोंमें रागादिकी कलुषता नहीं है। आप क्षायिक चारित्रसे शोभित हैं। आपके पास स्वाधीन आत्मासे उत्पन्न अतीन्द्रिय पूर्ण सुख है। जैसे निर्मल जल शीतल व मलसे रहित भासता है वैसे आपका सम्यग्दर्शन मिथ्यादर्शनकी कीचसे रहित शुद्ध भासता है। अनंत दान भोगोपभोग लब्धियां आपके पास हैं, परन्तु उनसे कोई प्रयोजन आपको नहीं है, क्योंकि आप कृतकृत्य हैं, बाहरी सर्व विभूतिका सम्बन्ध आपके लिये निरर्थक है। आप तो अनंत गुणोंके स्वामी हैं। मुझ अल्पबुद्धिने कुछ गुणोंसे आपकी स्तुति की है। इसप्रकार परमैश्वर्य सहित श्री भगवान जिनेन्द्रकी स्तुति करके राजा श्रेणिक अपने मनुष्योंके बैठनेके कोठेमें गया और वहां बैठ गया।

इस जम्बूद्वीपके भरतक्षेत्रमें मगधदेश विख्यात है। उसमें श्री राजगृह नगरी राजधानी है। उसका राजा महाराज श्रेणिक श्री विपुलाचल पर्वतपर विराजित श्री वर्द्धमान भगवानके समवसरणमें जाकर भक्तिपूर्वक तिष्ठा है।

दूसरा अध्याय

श्री जम्बूस्वामी पूर्वभव–भावदेव भवदेव स्वर्गगमन।

(श्लोक २४१ का भाव)

संसार दुःखोंको हरनेवाले तीर्थंकर श्री संभवनाथको व इन्द्रोंसे वन्दनीक श्री अभिनन्दनस्वामीको हम भावसहित नमस्कार करते हैं।

तब समवशरणमें विराजित राजा श्रेणिक प्रफुल्लित कमल समान दोनों हाथोंको जोड़कर व भक्तिसे नतमस्तक होकर श्री जगतके गुरुसे तत्वोंका स्वरूप जाननेकी इच्छासे यह प्रार्थना करने लगा–हे भगवान् सर्वज्ञ ! मैं जानना चाहता हूं कि तत्वोंका विस्तार क्या है, धर्मका मार्ग क्या है, व उसका कैसा फल है। पुण्यवान महाराज श्रेणिकके प्रश्न करनेपर भगवान् श्री महावीरने गंभीर वाणीसे तत्वोंका व्याख्यान किया।

निरक्षरी ध्वनि।

व्याख्यान करते हुए महान् वक्ताके मुखकमलमें कोई विकार नहीं हुआ जैसे–दर्पणमें पदार्थोंके झलकनेपर भी कोई विकार नहीं होता है। तालु व ओष्ठ भी हिले नहीं। सर्व अंगसे उत्पन्न होनेवाली निरक्षरी ध्वनि भगवानके मुखसे प्रगट हुई–स्वयंभूके मुखसे वाणी ऐसी खिरी जैसे पर्वतकी गुफासे ध्वनि प्रगट हो। उस वाणीमें अर्थ भरा हुआ था। कहा है–

ताल्वोष्ठमपरिस्पंदि सर्वांगेषु समुद्भवाः।
अस्पृष्टकरणा वर्णा मुखादस्य विनिर्ययुः ॥ ७ ॥

स्फुरद्गिरिगुहोद्भूतप्रतिध्वनिसंनिभः।
प्रस्पष्टार्थको निरागाद्ध्वनिः स्वायंभुवात् मुखात् ॥ ८ ॥

भगवानकी इच्छा बिना भी जिनवाणी प्रगट हुई—महान पुरुषोंकी, योगाभ्याससे उत्पन्न शक्तियोंकी संपदा अचिंत्य है। चिंतवनमें नहीं आसक्ती है। कहा है—

विवक्षामंतरेणापि विविक्ताऽसीत् सरस्वती।
महीयसामचिन्त्या हि योगजाः शक्तिसम्पदः ॥ ९ ॥

सात तत्वकथन।

भगवानकी वाणी प्रगट होनेके पीछे गौतमगणधरने कहा—हे श्रेणिक ! मैं अनुक्रमसे जीव आदिसे लेकर काल पर्यंत तत्वार्थके स्वरूपको अनुक्रमसे कहता हूं सो सुनो। जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा, मोक्ष ये सात तत्व सम्यग्दर्शन तथा सम्यग्ज्ञानके विषय हैं। पुण्य व पाप पदार्थ स्वभावसे आस्रव व बन्धमें गर्भित हैं इसलिये तत्वज्ञानी आचार्यने उनको तत्वोंमें नहीं गिना है।

द्रव्य लक्षणको धारण करनेसे लोकमें छः द्रव्य हैं। जिसमें गुण व पर्याय हो उसको द्रव्य कहते हैं। जीव गुणपर्याय धारी है इसलिये द्रव्यका लक्षण रखनेसे द्रव्य है। पुद्गलके भी गुणपर्याय होते हैं इसलिये पुद्गलको भी द्रव्य कहते हैं। इसीतरह गुणपर्यायके धारी अन्य चार द्रव्योंकी भी सत्ता है अर्थात् धर्म, अधर्म, आकाश और काल प्रदेशोंकी बहुलता रखनेवाले द्रव्योंको अस्तिकाय कहते

हैं। ऐसे अस्तिकाय स्वभाववाले पांच द्रव्य हैं। कालके कायपना नहीं है। कालगुणके एक ही प्रदेश है इसलिये कालद्रव्य अस्तिकाय नहीं है। जितने आकाशको एक अविभागी पुद्गलका परमाणु रोकता है उसको प्रदेश कहते हैं। इस मापसे मापने पर काल सिवाय अन्य पांच द्रव्योंके बहु प्रदेश मापमें आवेंगे। इसलिये जीव, पुद्गल, धर्म, अधर्म व आकाश अस्तिकाय हैं। जीव आदि पदार्थोंका जैसा उनका यथार्थ स्वरूप है वैसा ही श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। तथा उनको वैसा ही जानना सम्यग्ज्ञान है। कर्मोंके बंधनके कारण भावोंका जिससे निरोध हो वह चारित्र है। इन तीनोंकी एकतासे कर्मोंका नाश होता है इसलिये यह रत्नत्रय मोक्षका मार्ग है। सम्यग्दर्शनको सम्यग्ज्ञानसे पहले इसलिये कहा गया है कि सम्यग्दर्शनके विना ज्ञानको अज्ञान या मिथ्या ज्ञान कहा जाता है।

यहां द्रव्यसंग्रहकी गाथा दी है, जिसका अर्थ है—जीवादि तत्वोंका श्रद्धान करना सम्यग्दर्शन है। निश्चयसे वह आत्माका स्वभाव है। संशय, विमोह, विभ्रम रहित ज्ञान तब ही सम्यग्ज्ञान कहलाता है जब सम्यग्दर्शन प्रगट होजावे। सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानपूर्वक ही चारित्र अपना वास्तव कार्य करनेको समर्थ होता है। यदि ये दोनों न हों तो वह चारित्र मिथ्याचारित्र कहलाता है। इन तत्वोंका लक्षण तत्वज्ञानके लिये कुछ आगमानुसार कहा जाता है। द्रव्योंमें अस्तित्व आदि सामान्य स्वभाव है। तथा ज्ञानादि विशेष स्वभाव हैं।

जीवतत्व ।

यह जीव सदासे सत् है, अनादि अनंत है, नित्य है, स्वतः सिद्ध है, मूलमें पुद्गल सम्बन्धी शरीरोंसे रहित है, असंख्यात प्रदेशोंको रखनेवाला है, अनंत गुणोंका धारी है, पर्यायकी अपेक्षा जीवमें व्यय उत्पाद होता है। जीवका विशेष लक्षण चेतना है, यह ज्ञाताद्दष्टा है, यह कर्ता है, यही भोक्ता है, निश्चयसे अपने ही शुद्ध भावोंका कर्ताभोक्ता है। अशुद्ध निश्चयसे रागद्वेषादि भावोंका कर्ता व भोक्ता है। व्यवहारनयसे द्रव्यकर्म व नोकर्मका कर्ता व भोक्ता है।

संसारदशामें समुद्घातके सिवाय प्राप्त शरीरके प्रमाण आकारका धरनेवाला है। वेदना, कषाय, विक्रिया, आहारक, तैजस, मारणांतिक व केवल समुद्घातमें कुछ कालके लिये शरीरसे बाहर फैलता है, फिर संकोच कर शरीराकार होजाता है। नाम कर्मके उदयसे दीपकके प्रकाशकी तरह संकोच विस्तारके कारण छोटे व बड़े शरीरमें छोटे व बड़े शरीर प्रमाण होता है। मोक्ष होनेपर अंतिम शरीर प्रमाण रहता है। जब इस जीवके सर्वकर्मोंका नाश होजाता है तब यह जीव शुद्ध ज्ञानादि गुणोंके साथ ऊर्द्धगमन स्वभावसे लोकके ऊपर सिद्धक्षेत्रमें विराजता है।

इस जीवको प्राणी, जन्तु, क्षेत्रज्ञ, पुरुष, पुमान्, आत्मा, अन्तरात्मा, ज्ञ, ज्ञानी आदि नामोंसे कहते हैं। क्योंकि संसारके जन्मोंमें यह जीता है, जीता था व जीवेगा। इसलिये इसको जीव

कहते हैं। संसारसे छूटकर मोक्ष होनेपर भी सदा जीता रहता है, तब इसको सिद्ध कहते हैं। जीवके तीन भेद भी कहे जाते हैं—भव्य, अभव्य और सिद्ध। जिनके सुवर्ण धातु पाषाणके समान सिद्ध होनेकी शक्ति है, उनको भव्य कहते हैं। अन्ध पाषाणके समान जिनमें सिद्ध होनेकी शक्ति नहीं है उनको अभव्य कहते हैं। अभव्योंको कभी भी मोक्षके कारणरूप सामग्रीका लाभ नहीं होगा। जो कर्मबन्धसे मुक्त होकर तीन लोकके शिखर पर विराजमान होते हैं और जो अनंत सुखके भोक्ता हैं वे कर्मोंके अंजनसे रहित निरंजन सिद्ध हैं। इस तरह जीवतत्वका संक्षेपमें कथन किया गया। अब अजीव पदार्थको कहता हूं, सुनो—

अजीव तत्व।

जिसमें जीव तत्व न हो उसको अजीव कहते हैं। इसके पांच भेद हैं—धर्मद्रव्य, अधर्मद्रव्य, आकाशद्रव्य, कालद्रव्य और पुद्गलद्रव्य। जो द्रव्य अमूर्तीक लोकव्यापी है व जो जीव और पुद्गलके गमनमें उदासीन निमित्त कारण है वह धर्म द्रव्य है, यह गमनमें प्रेरणा नहीं करता है। जैसे मछलीके इच्छापूर्वक गमनमें जल सहायक है, जल मछलीको प्रेरणा नहीं करता है, इसी तरहका लोकव्यापी अमूर्तीक अधर्म द्रव्य है जो जीव और पुद्गलोंके ठहरनेमें उदासीन निमित्त कारण है। जैसे वृक्षकी छाया पथिकको ठहरानेमें निमित्त कारण है—प्रेरक नहीं है, इसी तरह अधर्म भी प्रेरक नहीं है। आकाश द्रव्य, अनंत व्यापी, अमूर्तीक, हलन चलन क्रिया रहित,

स्पर्शमें न आने योग्य एक द्रव्य है, जो जीवादि पदार्थोंको अवगाह देता है। काल द्रव्य वर्तना लक्षण है, सर्व द्रव्य अपने २ गुणोंकी पर्यायोंमें वर्तन करते हैं उनके लिये कालद्रव्य निमित्त कारण है। जिस तरह कुम्हारके चक्रके स्वयं घूमनेमें नीचेकी शिला कारण है इसी तरह स्वयं परिणमन करनेवाले द्रव्योंकी पर्याय पलटनेमें निमित्त-कारण काल है ऐसा पण्डितोंने कहा है। व्यवहार समय घड़िका आदि कालसे ही मुख्य या निश्चय कालका निर्णय होता है. क्योंकि निश्चय कालके विना व्यवहार काल नहीं होसकता। व्यवहार काल परम सूक्ष्म एक समय है, जो निश्चय काल-कालाणु द्रव्यकी पर्याय है। जैसे बाहीक या पंजाबीको देखनेसे पंजाबका निश्चय होता है, पंजाब न हो तो पंजाबका निवासी नहीं कहा जासक्ता। काल द्रव्य कालाणुरूपसे असंख्यात है, लोकाकाश प्रमाण प्रदेशोंमें भिन्न २ रत्नोंकी राशिके समान व्यापक है। क्योंकि एक कालाणुका प्रदेश दूसरे कालाणुके प्रदेशसे कभी मिलता नहीं है। इसलिये कालको काय रहित कहते हैं। शेष पांच द्रव्योंके प्रदेश एकसे अधिक हैं व परस्पर मिले हुए हैं इसलिये इन पांच द्रव्योंको पंचास्तिकाय कहते हैं।

धर्म, अधर्म, आकाश तथा काल ये चार अजीव पदार्थ शरीरादि गुणरहित होनेसे अमूर्तीक हैं, केवल पुद्गल द्रव्य मूर्तीक है, क्योंकि उनमें स्पर्श, रस, गंध, वर्ण पाया जाता है। पुद्गलके भेद सुनोः—

स्पर्श, रस, गंध, वर्ण इन चार मुख्य गुणोंके धारी पुद्गल द्रव्यको

पुद्गल इसलिये कहते हैं कि उसमें पूरण और गलन होता है। परमाणु मिलकर स्कंध बनते हैं, स्कंधसे छूटकर परमाणु बनते हैं तथा परमाणुओंमें भी पुरानी पर्यायका गलन व नई पर्यायका प्रकाश होता है। पुद्गलोंके मूल दो भेद हैं, परमाणु और स्कंध—परमाणुओंमें रूक्ष तथा स्निग्ध गुणके कारण परस्पर बंध होनेसे स्कंध बनते हैं। दो अंश अधिक चिकना या रूखा गुण होनेसे बंध होजाते हैं, जैसे १२ अंश चिकना परमाणु १४ अंश चिकने या रूक्षमें मिलजायगा या १५ अंश रूखा परमाणु १७ अंश रूखे या चिकने परमाणुमें मिल जायगा। जिसमें अधिक गुण होगा वह दूसरे परमाणुको अपने रूप कर लेगा। जघन्य अंशधारी चिकने व रूखे परमाणुका बन्ध नहीं होता है। स्कंधोंके अनेक भेद दो परमाणुओंके स्कंधसे लेकर महा स्कंध पर्यंत हैं। छाया, धूप, अंधेरा, प्रकाश आदिके स्कंध होते हैं।

पुद्गलोंके छः भेद किये गए हैं—१ सूक्ष्म सूक्ष्म, २ सूक्ष्म, ३ सूक्ष्म स्थूल, ४ स्थूल सूक्ष्म, ५ स्थूल, ६ स्थूल स्थूल। सूक्ष्म सूक्ष्म एक अविभागी पुद्गला परमाणु है जो देखनेमें नहीं आता। अनुमानसे ही जाना जाता है। सूक्ष्म पुद्गलोंका दृष्टांत कार्मणवर्गणा है, जिसमें अनंत परमाणुओंका संयोग है तौ भी वह इन्द्रियोंके गोचर नहीं है। चार इन्द्रियोंका विषय शब्द, स्पर्श, रस, गंध सूक्ष्म स्थूल हैं। ये चारों आंखसे नहीं दिखलाई पडते हैं। स्थूल सूक्ष्म पुद्गल छाया, प्रकाश, आतप आदि हैं, जो आंखसे दिखलाई पडते हैं परन्तु उनको न तो ग्रहण किया जा सक्ता है न उनका घात किया जा सक्ता है। बहनेवाले

द्रव्य जल आदि स्थूल हैं। पृथ्वी आदि मोटे स्कंध जो टुकडे करने पर स्वयं नहीं मिल सकें स्थूल स्थूल हैं।

आस्रव तत्व।

आस्रवके दो भेद हैं—भावास्रव और द्रव्यास्रव। कर्मके निमित्तसे होनेवाले जीवके अशुद्ध भावोंको भावास्रव कहते हैं। आगमानुसार भावास्रवके चार भेद हैं—मिथ्यात्व, अविरति, कषाय तथा योग। जीवादि तत्वोंका व सच्चे देव शास्त्र गुरुका श्रद्धान न होना मिथ्यात्व है। हिंसा, असत्य, चोरी, कुशील व परिग्रहमें वर्तन अविरति है। क्रोध, मान, माया, लोभके वश होना कषाय है। मन, वचन, कायके निमित्तसे आत्मामें चंचलता होना योग है। इन भावास्रवोंके निमित्तसे कर्मवर्गणा योग्य पुद्गल कर्मरूप अवस्थाके होनेको प्राप्त होते हैं वह द्रव्यास्रव है।

बन्ध तत्व।

आस्रवपूर्वक बन्ध होता है अर्थात् कर्म बन्धके सम्मुख होकर बंधते हैं। इस बंधतत्वके भी दो भेद हैं—भावबन्ध और द्रव्यबन्ध। जिन अशुद्ध भावोंसे बन्ध होता है वह भावबन्ध है। कर्मवर्गणाका कार्मण शरीरके साथ बन्धजाना द्रव्यबन्ध है। बंधके चार भेद हैं—प्रकृति, स्थिति, अनुभाग, प्रदेश।

ज्ञानावरणादि आठ कर्मरूप स्वभाव पड़ना प्रकृतिबन्ध है। कितनी संख्या किस कर्मकी बंधी सो प्रदेशबंध है। कर्मोंमें कितनी मर्यादा पड़ी यह स्थितिबन्ध है। उन कर्मोंमें तीव्र व मंद फलदान

शक्ति पड़ना अनुभाग बंध है। चारों ही बंध एक साथ योग और कषायोंसे होते हैं।

संवर तत्व।

आस्रवके रोकनेको संवर कहते हैं। जिन शुद्ध भावोंसे कर्मोंका आना रुकता है वह भाव संवर है। कर्मोंके आस्रवका रुक जाना यह द्रव्य संवर है।

निर्जरा तत्व।

कर्मोंके आत्मासे अलग होनेको निर्जरा कहते हैं। निर्जराके दो भेद हैं-सविपाक निर्जरा और अविपाक निर्जरा। जो कर्म पककर अपने समयपर झड़ता है वह सविपाक निर्जरा है। जो कर्म पकनेके पहले शुद्ध भावोंसे दूर किया जाता है वह अविपाक निर्जरा है। यह निर्जरा संवरपूर्वक होती है व यही कार्यकारी है। तत्वज्ञानियोंने इस निर्जराके दो भेद कहे हैं-जिन शुद्ध भावोंसे कर्मकी निर्जरा होती है वह भाव निर्जरा है। उन शुद्ध भावोंके प्रभावसे कर्मोंका झड़ जाना द्रव्य निर्जरा है।

मोक्ष तत्व।

जीवका सब कर्मोंके क्षय होनेपर अशुद्धावस्थाको छोड़कर शुद्ध अवस्थाको प्राप्त होना मोक्ष है। मोक्ष पर्यायमें अनंत ज्ञान, अनंत आनंद आदि स्वभावोंका प्रकाश स्वतः होजाता है।

पुण्य पाप पदार्थ।

शुभ भावोंसे पुण्य कर्मका व अशुभ भावोंसे पाप कर्मका बंध

होता है। अहिंसादि व्रतोंके पालनेसे शुभ भाव होते हैं। हिंसादि पापोंसे अशुभ भाव होते हैं।

इस प्रकार श्री गौतमस्वामीने श्रेणिक महाराजको सात तत्वोंका वर्णन किया। इतने हीमें आकाशसे कोई तेजमई पदार्थ उतरता हुआ दिखलाई पड़ा। ऐसा झलकता था कि सूर्यका बिम्ब अपना दूसरा रूप बनाकर पृथ्वीतलपर वीतराग भगवानकी समवशरण लक्ष्मीके दर्शन करनेको आया हो।

विद्युन्माली देवका आना।

महाराजा श्रेणिक इस अकस्मात्को देखकर आश्चर्यमें भर गए। गौतमस्वामीसे पुनः पूछा कि यह क्या दिखलाई पड़ रहा है? ऐसा पूछनेपर गौतमस्वामी कहने लगे कि हे राजन्! यह महाऋद्धिका धारी विद्युन्माली नामका देव है, प्रसिद्ध है। अपनी चार महादेवियोंको लेकर धर्मके अनुरागसे श्री जिनेन्द्रकी वन्दना करनेके लिये शीघ्र २ चला आरहा है। यह भव्यात्मा आजसे सातवें दिन स्वर्गसे चयकर मानव जन्ममें आयगा। यह चरम शरीरी है, उसी मनुष्य भवसे मोक्ष जायगा।

श्रेणिकके प्रश्न।

गौतमस्वामीके वचन सुनकर राजा श्रेणिक भक्तिभारसे पूर्ण हो व परम प्रीतिपूर्वक तीन जगतके गुरु श्री जिनेन्द्र भगवानसे प्रार्थना करने लगे कि हे कृपानिधि स्वामी! आपने अपनी दिव्यध्वनिसे यह उपदेश किया था कि जब देवोंकी आयु छः मास शेष रह जाती

है तब उनके गलेमें पुष्पोंकी माला मुरझा जाती है, शरीरकी चमक मन्द पड़जाती है, उनके कल्प वृक्षोंकी ज्योति कम होजाती है, महा राज ! इस देवके मुखका तेज सब दिशाओंमें व्याप्त है। इसका शरीर बड़ा तेजस्वी है, यह प्रत्यक्ष दिखलाई पड़ता है। यह बात बड़े आश्चर्यकी है। तब सिंहासन पर बिराजमान श्री जिनेन्द्ररूपी देवने राजा श्रेणिकके संशयरूपी अंधकारको दूर करते हुए गम्भीर वाणीसे यह प्रकाश किया कि हे राजन् ! इस देवका सर्व वृतान्त आश्चर्य-कारक है। इस देवकी कथाको सुननेसे धर्मप्रेमकी वृद्धि होगी व संसार शरीर भोगोंसे वैराग्य उत्पन्न होगा। तू चित्त लगाकर सुन।

भावदेव भवदेव ब्राह्मण।

इसी धनधान्य सुवर्णादिसे पूर्ण मगधदेशमें पूर्वकालमें एक वर्द्धमान नामका नगर था। वह नगर वन व उपवनोंकी पंक्तिसे व कोट खाई आदिसे शोभनीक था। विशाल कोटके चार विशाल द्वार थे। जहांकी महिलाएं भी सुन्दर थीं, वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत थीं। वहां ऐसे ब्राह्मण रहते थे जो वेद मार्गको जाननेवाले थे। पुण्यके व हितके लाभके लिये यज्ञमें हिंसा पशुवध करते थे। मिथ्यात्वके अंधकारसे कुमार्गगामी विप्र यज्ञोंमें गौ, हाथी, बकरादि यहां तक कि मानवकी भी बलि करते थे। उन्हींमें एक आर्यावसु नामका ब्राह्मण रहता था, जो वेदका ज्ञाता व अपने धर्म कर्ममें प्रवीण था। उसकी स्त्री सोमशर्मा बड़ी पतिव्रता सीताके समान साध्वी तथा पतिकी आज्ञानुकूल चलनेवाली थी। उस ब्राह्मणके दो पुत्र भावदेव, भवदेव

थे जो चंद्रमा व सूर्यके समान शोभते थे। धीरे २ दोनों पुत्रोंने विद्याभ्यास करके वेदशास्त्र, व्याकरण, वैद्यक, तर्क, छन्द, ज्योतिष, संगीत, काव्यालंकार आदि विषयोंमें प्रवीणता प्राप्त की। वे विद्या-रूपी समुद्रके पार पहुंच गए।

ये दोनों ब्राह्मण वाद-विवाद करनेमें बहुत प्रवीण थे, ज्ञान-विज्ञानमें चतुर थे। दोनो भाइयोंमें ऐसा प्रेम था, जैसा पुण्यके साथ सांसारिक सुखका प्रेम होता है। ये दोनो विना किसी उपद्रवके सुखसे बढ़कर कुमार वयको प्राप्त हुए। पूर्व पाप-कर्मके उदयसे उनके पिता महान व्याधिसे पीड़ित होगए। उसको कोढ़का रोग हो गया। शरीरभरमें कुष्टरोग फैल गया। कान, आंख, नाक गलने लगे, अंग उपङ्ग सड़ने लगे, तीव्र वेदनासे वह ब्राह्मण व्याकुल हो गया। यह प्राणी अज्ञानसे पापकर्म बांध लेता है। जब उस कर्मका फल दुःख होता है तब उसको सहना दुष्कर होजाता है। जो कोई स्वादिष्ट भोजनको अधिक मात्रामें खालेता है, जब वह भोजन पचता नहीं तब वह दुःखदाई होजाता है, ऐसा जानकर बुद्धि-मान्को उचित है कि वह इन्द्रियोंके विषयोंको विषके समान कटुक फलदाई जानकर छोड़ दे और विकार रहित मोक्षपदके देनेवाले धर्मामृतका पान करे। कहा है:—

अज्ञानेनार्यते कर्म तद्विपाको हि दुस्तरः।
स्वादु संभोज्यते पथ्यं तत्पाके दुःखवानिव॥ ८८ ॥
मत्वेति धीमता त्याज्या विषया विषसंनिभाः।
धर्मामृतं च पानीयं निर्विकारपदप्रदम्॥ ८९ ॥

वह ब्राह्मण महान दुःखी होकर अपना मरण नित्य चाहता था। मरण न होते हुए वह पतंगके समान अग्निकी चितापर पड़कर भस्म होगया। अपने पतिके वियोगसे शोकपीड़ित होकर सोमशर्मा ब्राह्मणी भी उसीकी चितामें भस्म होगई। मातापिता दोनोंके मरनेपर ये दोनो भावदेव व भवदेव अत्यंत दुःखी हुए—शोकके संतापसे तप्त होगए। करुणा उत्पादक शब्दोंसे विलाप करने लगे। उनके निजी बन्धुओंने समभावसे बहुत समझाया तब उन्होंने शोकको छोड़कर मातापिताकी मरणक्रिया की। जैसी ब्राह्मणोंकी रीति है उसके अनुसार तर्पण आदि क्रिया की। फिर शोकके वेगोंको दूर करके वे दोनों ब्राह्मण पहलेके समान अपने घरके कामोंमें लग गए।

बहुत दिनोंके पीछे उस नगरमें एक सौधर्म नामके मुनिराज पधारे, जो धर्मकी मूर्ति ही थे। जो बाहरी व भीतरी सर्व परिग्रहके त्यागी थे, जन्मके बालकके समान नग्न स्वरूपके धारी थे, मन, वचन, कायकी गुप्तिसे सज्जित थे, जैन इ. श्लोक अर्थमें शंका रहित थे, परन्तु व्रतोंसे कभी च्युत न होजावें इ. शंकाको रखते थे, सर्व प्राणी मात्रपर दयालु थे, तथापि कर्मोंके नाशमें दया रहित थे, मिथ्या एकांत मतके खण्डनमें स्याद्वाद बलके धारी थे, सूर्यके समान तेजस्वी थे, चंद्रमाके समान सर्वांग शांत थे, मेरू पर्वतके समान उन्नत व धीर थे। वे जैन साधु संसारकी दावानलसे तप्त प्राणियोंको मेघके समान शांतिदाता थे। भवरूपी चातकोंको धर्मोपदेशरूपी जलसे पोषनेवाले थे, आलस्य रहित थे, इंद्रियोंके जीतनेवाले थे, ज्ञान विज्ञानसे पूर्ण थे,

गुणोंके सागर थे, वीतराग थे, गणके नायक थे, शत्रु मित्र, जीवन मरणमें समान भावधारी थे। लाभ अलाभमें व मान अपमानमें विकार रहित थे, रत्नत्रय धारी थे, धीर थे, तप रूपी अलंकारसे भूषित थे, संयम पालनेमें निरन्तर सावधान थे, वैराग्यवान होनेपर भी प्राय: करुणा रससे पूर्ण होजाते थे। ऐसे मुनिराज आठ मुनियोंके संघ सहित वनमें विराजमान हुए। कहा है—

सर्वसंगविमुक्तात्मा बाह्याभ्यंतरभेदतः।
यथाजातस्वरूपोऽपि सज्जो गुप्तश्च गुप्तिभिः ॥ ९६ ॥

स्याद्वादी कुमतध्वान्ते तेजस्वी भानुमानिव।
सौम्यः शशीव सर्वांगे धीरो मेरुरिवोन्नतः ॥ ९८ ॥

(नोट—जैन साधुका ऐसा स्वरूप होना चाहिये।)

अवसर पाकर मुनिराजने दयामई जैन धर्मका उपदेश देना प्रारम्भ किया।

मुनिराजका धर्मोपदेश।

हे भव्यजीवो! तुम सब श्रवण करो, यह धर्म उत्तम है। स्वर्ग तथा मोक्षका बीज है, शुभ है व तीन लोकके प्राणियोंका रक्षक है।

इस संसारमें सर्व ही प्राणी यहांतक कि स्वर्गके देव भी सब अपनेर कर्मोंके उदयके वश हैं। उनको रंच मात्र भी सुख नहीं है। तौ भी मोहके माहात्म्यसे यह मूढ़ संसारी प्राणी ज्ञानके लोचनको बन्द किये हुए इन्द्रियोंके विषयोंमें आसक्त होकर सुख मान रहा है। यह शरीर अनित्य है, पुत्र-पौत्र आदि नाशवन्त हैं, संपदा,

घर, स्त्री आदि सब छूट जानेवाले हैं। मिथ्यादृष्टि अज्ञानी इन सब अनित्य पदार्थोंमें नित्यपनेकी बुद्धि करता है। चाहता है कि ये सदा बना रहे। अपनेको सुख मिलेगा, इस आशासे दुःखोंके मूल कारण इन विषयभोगोंमें रमण करता है। जब विषयभोगोंका वियोग होजाता है तब दुःखोंसे पीड़ित होकर पशुके समान कष्ट भोगता है।

क्षणभरमें कामी होजाता है, क्षणभरमें लोभी होजाता है, क्षणभरमें तृष्णासे पीड़ित होता है, क्षणमें भोगी बन जाता है, क्षण-भरमें रोगी होजाता है, भूतपीड़ित प्राणीकी तरह व्यवहार करता है। कहा है—

क्षणं कामी क्षणं लोभी क्षणं तृष्णापरायणः।
क्षणं भोगी क्षणं रोगी भूताविष्ट इवाचरेत् ॥ १०९ ॥

यह अज्ञानी मोही प्राणी बारबार रागद्वेषमई होकर ऐसे कर्म बांधता है जिनका छूटना कठिन है। इसलिये बारबार दुर्गतिमें जाता है। कभी अत्यन्त पापकर्मके उदयसे नारकी होकर असहनीय ताडनमारणादि दुःखोंको सागरोंतक सहता है।

कभी तिर्यंच गतिमें जन्म लेकर या मनुष्यगतिमें नीच कुलमें जन्म लेकर हजारों प्रकारके दुःखोंसे पीड़ित होता हुआ इस संसारमें भ्रमण किया करता है। चार गतियोंमें भ्रमण करते हुए इस जीवको अनंतकाल होगया। सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रमई धर्मको न पाकर इसे कभी थिरता नहीं मिली। इसलिये जो कोई प्राणी सुखका अर्थी है उसको अवश्य ही जिनेन्द्र कथित धर्मका संग्रह सदा करना चाहिये।

भावदेव मुनिदीक्षा।

इसप्रकार मुनिमहाराजके शांतिगर्भित अनुपम वचनोंको सुनकर भावदेव ब्राह्मणका हृदय कंपित होगया, संसार भ्रमणसे भयभीत होगया, मनमें वैराग्य पैदा होगया। हाथ जोडकर सौधर्म मुनिराजसे प्रार्थना करने लगा कि हे स्वामी! मैं संसार–समुद्रमें डूब रहा हूं, मेरी रक्षा कीजिये, जिससे मैं अविनाशी आत्मीक सुखको प्राप्त कर सकूं। कृपा करके मुझे पवित्र जैन साधुकी दीक्षा दीजिये। यह दीक्षा सर्वपरिग्रहके त्यागसे होती है तथा यही संसारका छेद करनेवाली है ऐसा मुझे निश्चय होगया है। भावदेवके ऐसे शांत वचन सुनकर सौधर्म मुनिराजने उसको संतोषप्रद वचन कहे–हे ब्रह्म! यदि तू वास्तवमें संसारके भोगोंको रोगके समान जानकर वैराग्यवान हुआ है तो तू इस जिनदीक्षाको धारण कर। जो जीव संसारमें रागी हैं वे इसे धारण नहीं कर सक्ते। गुरुमहाराजके उपदेशसे शुद्ध बुद्धिधारी भावदेवको बहुत धैर्य प्राप्त हुआ। वह ब्राह्मणोत्तम सब शल्य त्यागकर मुनिदीक्षामें दीक्षित होगया।

फिर वे सौधर्म योगीराज अपने संयमकी विराधना न करते हुए पृथ्वीतल पर विहार करने लगे। वे मुनिराज गुणोंमें महान थे। ऐसे गुरुके साथ साथ भावदेव मुनि पापरहित भावसे घोर तप करने लगा। दुःख तथा सुखमें समान भाव रखता था। एकाग्र भावसे कभी ध्यान कभी स्वाध्यायमें निरंतर लगा रहता था। विनयवान होकर ब्रह्म भावको उत्पन्न करनेवाले शब्द ब्रह्ममई तत्वका अभ्यास

करता था। अर्थात् ॐ, सोऽहम् आदि मंत्रोंसे निजात्माके स्वरूपको ध्याता था। कहा है—

स्वाध्यायध्यानमैकाग्र्यं ध्यायन्निह निरंतरम्।
शब्दब्रह्ममयं तत्त्वमभ्यसन् विनयानतः॥ १२४॥

वह भावदेव मनमें ऐसा समझता था कि मैं धन्य हूं, कृतार्थ हूं, बड़ा बुद्धिशाली हूं, अवश्य भवसागरसे तिरनेवाला हूं जो मैंने इस उत्तम जैन धर्मका लाभ प्राप्त किया है।

बहुत काल विहार करते हुए वे सौधर्म मुनिराज एक दफे भावदेवके साथ उसी वर्द्धमानपुरमें पधारे। उससमय विशुद्ध बुद्धिधारी भावदेवने अपने छोटे भाई भवदेवको याद किया। भवदेव ब्राह्मण इस नगरमें प्रसिद्ध था, परन्तु संसारके विषयोंमें अंधा था. एकांत मतके शास्त्रोंमें अनुरागी था, अपने यथार्थ आत्महितको नहीं जानता था। भावदेवके भावोंमें करुणाने घर किया और यह संकल्प किया कि मैं स्वयं उसको जाकर सम्बोधूं तो उसका कल्याण होगा। परम वैराग्यवान होनेपर भी परहितकी कांक्षासे उसके घर स्वयं जानेका मनोरथ कर लिया।

मैं उसको अर्हत् धर्मका उपदेश करूं। किसी तरह भी यदि वह समझ जायगा तो वह अवश्य संसारके भोगोंसे विरक्त होकर मुनि हो जायगा ऐसा अपने मनमें विचार कर भावदेव अपने गुरुके पास आज्ञा मांगनेके लिये गए और कहा—हे महाराज! मुझे आज्ञा दीजिये कि मैं जाकर अपने छोटे भाईको संबोधन करूं,

आपके प्रभावसे मेरे भावमें यह करुणा पैदा हुई है। इस प्रकार अपने गुरुको प्रसन्न करके व आज्ञा लेकर तथा वारवार नमस्कार करके भावदेव मुनि शुद्ध भावसे ईर्या समिति पालते हुए-भूमिको निरख कर चलते हुए भवदेवके सुन्दर घरमें पधारे। भवदेवके घरमें आकर वहींकी अवस्था देखकर आश्चर्यमें भर गए। क्या देखते हैं कि तोरणोंमें शोभित मंडप छाया हुआ है, मंगलमई बाजोंके शब्द होरहे हैं जिनके शब्दोंसे दिशा चूर्ण होती है। युवती स्त्रियां मंगलगान कररही हैं, बंदीजन वेद—वाक्योंसे स्तुति पढ़ रहे हैं। चित्रोंसे लिखित ध्वजा हिल रही हैं, सुगंधित कुंद आदि फूलोंकी मालाएं लटक रही हैं। कर्पूरसे मिश्रित श्रीखंडसे रचना बनी हुई है। ऐसा देखकर भी दयालु मुनिराज भावदेव उसके घरके आंगणमें शीघ्र ही जाकर खड़े होगए। मुनिराजको देखकर भवदेव उसी समय स्वागतके लिये उठा, नतमस्तक हुआ, उच्च आसनपर विराजमान किया, बार बार नमस्कार किया और भावदेव मुनिके निकट विनयसे बैठगया।

भवदेव संबोधन व जैनधर्म ग्रहण।

योगीमहाराजने धर्मवृद्धि कहकर आशीर्वाद दिया। व उसको संतोषित किया। तब भवदेवने पूछा—हे भ्रात! आपके संयममें, तपमें, एकाग्र चिन्तवन ध्यानमें, स्वात्मजनित ज्ञानमें कुशल हैं? महान बुद्धिमति मुनिने समभावसे कहा कि वत्स! हमें सब समाधान है। हमें यह तो बताओ कि इस घरमें क्या हुआ था, क्या होरहा है, व क्या होनेवाला है? हे भ्राता! तेरे घरमें मण्डपका आरम्भ

दिखाई पड़ता है, तेरा सौम्य शरीर परम सुन्दर व भूषणोंसे अलंकृत है। तेरे हाथमें कंकण बन्धा है, तेरे यहां कोई उत्सव दिखाई पड़ता है। गुरुमहाराजके इस वाक्योंको सुनकर भवदेवने मुख नीचा कर लिया। कुछ मुसकराते हुए व लज्जासे डगमगाते हुए वचनोंसे कहा- —

हे स्वामी! इस नगरमें दुर्मिषण नामका ब्राह्मण रहता है उसकी नागश्री नामकी स्त्री है। वह कुलवान व शीलवान है। उनकी नागश्री नामकी पुत्री है। बन्धुजनोंकी आज्ञासे उसके साथ आज मेरा विवाह वेदवाक्योंके साथ हुआ है। अपने छोटे भाईकी इस उचित वाणीको सुनकर मुनिराज बोले—हे भ्राता! इस जगतमें धर्मके प्रतापसे कोई बात दुर्लभ नहीं है। धर्मसे ही इन्द्रपद, सर्वसंपदासे पूर्ण चक्रवर्तीपद, नारायण व प्रतिनारायणपद व राजाका पद प्राप्त होता है। धर्मका लक्षण सर्व प्राणियोंपर दया भाव है अर्थात् अहिंसा लक्षण धर्म है, वही धर्म यती तथा गृहस्थके भेदसे दो प्रकार हैं। तथा सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र मय रत्नत्रयके भेदसे तीन प्रकार हैं ऐसा जिनेन्द्रने उपदेश किया है। कहा है—

सर्वप्राणिदयालक्ष्मो गृहस्थयमिनोर्द्विधा।
रत्नत्रयमयो धर्मः स त्रिधा जिनदेशितः ॥१५१॥

मनुष्य जन्म बहुत कठिनतासे प्राप्त होता है। ऐसे नर जन्मको पाकर जो कोई धर्मका आचरण नहीं करता है उसका जन्म

पूजा जाता है, ऐसा मैं मानता हूं। इत्यादि मुनिरूपी समुद्रसे धर्मामृतसे पूर्ण पवित्र वचनोंके रसको पीकर भवदेव बहुत संतुष्ट हुआ और उन्होंने भावपूर्वक श्रावकके व्रत ग्रहण कर लिये।

भवदेवका आहारदान।

व्रतोंको ग्रहणकर उसी समय मुनिराजसे प्रार्थना की कि स्वामी! आज मेरे घरमें कृपाकर आप भोजन स्वीकार करें। धर्मके अनुरागसे पूर्ण अपने छोटे भाईके वचन सुनकर मुनिमहाराजने दोषरहित शुद्ध आहार ग्रहण किया। कहा है—

पीत्वा वाक्यामृतं पूतं प्राप्तं मुनिमहोदधेः।
भवदेवो व्रतान्युच्चैः श्रावकस्यागृहीत्तदा ॥ १५३ ॥
संग्रहीतव्रतेनाशु विज्ञप्तो मुनिनायकः।
स्वामिन्नत्र गृहे मेऽद्य त्वया भोज्यं कृपापर ॥ १५४ ॥
विज्ञप्तेरनुजस्यैव भ्रातृधर्मानुरागतः।
मुनिः स शुद्धमाहारं निःसावद्यं जघास सः ॥१५५॥

(नोट-इन वाक्योंसे मुनिराजकी उदारता व सरलता व सज्जनता व निरभिमानता प्रगट होती है। एक यज्ञकी हिंसाका माननेवाला ब्राह्मण जब हिंसाको त्यागकर श्रावकके अहिंसादि बारह व्रतोंको स्वीकार करलेता है तब उसी क्षण वह श्रद्धावान श्रावक माना जाने लगा। उसके हाथका आहार उसी दिन लेना मुनिने अनुचित नहीं समझा। उसको आहारकी विधि सब बतादी थी। यद्यपि उसकी प्रार्थना एक निमंत्रण रूपमें थी। जैन मुनि निमंत्रण नहीं मानते

हैं इस अतीचारका ध्यान उससमय मुनिराजने उसके धर्मानुरागके महत्वको देखकर नहीं किया। यह उनका भाव था कि किसी प्रकार यह मोक्षमार्ग पर दृढतासे आरूढ़ होजावे। यद्यपि मुनिने आहार अवश्य नवधाभक्तिसे लिया होगा। जब भोजनका समय होगा तब उस श्रावकने अतिथि संविभाग व्रतके अनुसार ही आहारदान दिया होगा। यदि वह स्वीकार नहीं करते तो उसका मन मुरझा जाता व धर्मप्रेम कम होनेकी भी संभावना थी। इत्यादि बातोंको विचार कर परम उदार, जिन धर्मके ज्ञाता, द्रव्य, क्षेत्र, काल भावको विचारनेवाले मुनिराजने उसके हाथका उसी दिन आहारदान लेना उचित समझा। किंचित् अतिचार पर ध्यान नहीं दिया। उसके सुधारका भाव अतिशय उनके परिणाममें था।)

आहारके पश्चात् भावदेव मुनिराज अपने गुरु सौधर्मके पास, जो अनेक मुनिसंघ सहित वनमें तिष्ठे थे, ईर्यापथ सोधते हुए चलने लगे तब नगरके कुछ लोग मुनिकी अनुमति विना ही विनय करनेकी पद्धतिसे मुनिराजके पीछे चलने लगे। वे लोग कितनी दूरतक गए फिर अपने प्रयोजनके वशसे मुनिको नमस्कार करके अपने २ घर लौट आए।

भवदेव छोटा भाई भी मुनिके साथ पीछे २ गया था। वह भोला यह विचारने लगा कि जब मुनि आज्ञा देंगे कि तुम जाओ तब मैं लौटूंगा। इसी प्रतीक्षासे अपने गौरववश पीछे २ चला गया। मुनि महाराजने ऐसे वचन नहीं कहे न वह कह सक्ते थे;

क्योंकि ये वचन अहिंसा व्रतके घातक थे, वे मुनि धर्म-नाशसे भय-भीत थे व संयमादिकी भलेप्रकार सदा रक्षा करते थे। इस तरह चलते चलते वह बहुत दूर चला गया। यद्यपि भवदेव मोक्षका प्रेमी होगया था तो भी उसके कंकणकी गांठ थी। उसका चित्त व्याकुलित होने लगा। वह वारवार अपने मनमें नवीन वधू नागवसूके मुखकमलको याद करता था। उसका पग मूर्छित मानवकी तरह लड़खड़ाता हुआ पड़ता था। घर लौटनेकी इच्छासे कुछ उपाय विचार कर वह भवदेव अपने भाई भावदेवसे किसी बहानेसे वारवार कहने लगा कि-हे स्वामी! यह वृक्ष हमारे नगरसे दो कोस दूर है आप स्मरण करें, यहां आप और हम प्रतिदिन क्रीड़ा करनेको आते थे व बैठते थे। महाराज! यह देखिये। कमलोंसे शोभित सरोवर है। यहां हम दोनों मोरकी ध्वनि सुननेको बैठते थे। स्वामी देखिये, यह नाना वृक्षोंसे संगठित लगाया हुआ बाग है जहां हम दोनों बड़े भावसे पुष्प चुननेको आया करते थे।

कृपानाथ! यह वह चांदनीके समान उज्वल स्थान है जहां हम सब गेंद खेला करते थे। (नोट-गेंद खेलनेका रिवाज पुरातन है)। इसतरह बहुतसे वाक्योंसे भवदेवने अपना अभिप्राय कहा परन्तु भव-देव श्री मुनिराजके मनको जरा भी मोहित न करसका। मुनिराज मौनसे जारहे थे-न वचनसे हुंकार शब्द कहते थे न भुजाका संकेत करते थे। चलते चलते दोनों भाई श्री गुरुमहाराजके निकट पहुंच

गए। वे दोनों वृषभोंके समान धर्मरूपी रथकी धुराको चलानेवाले थे (भावार्थ-दोनों मोक्षगामी आत्मा थे) तब सब मुनियोंने भावदेव मुनिको कहा-हे महाभाग! तुम धन्य हो जो अपने भाईको यहां इससमय लेआए हो।

भावदेव मुनि भक्तिपूर्वक सौधर्म गुरुको नमस्कार करके अपने योग्य स्थानपर बैठ गए।

वहांके शांत वातावरणको देखकर भवदेव अपने मनमें विचारने लगा कि मैंने नवीन विवाह किया है। मैं यहां संयम धारण करूं या लौटकर घरको जाऊँ? सूझ नहीं पड़ता है क्या करूं? चित्तमें व्याकुल होने लगा, संशयके हिंडोलेमें झूलने लगा। अपने मनको क्षणभर भी स्थिर न कर सका। कभी यह सोचता था कि नवीन वधूके साथ घर जाकर दुर्लभ इच्छित भोग भोगूं। मेरे मनमें लज्जा है, इस बातको मैं कह नहीं सक्ता, तथा यह मुनीश्वरोंका पद बहुत दुर्द्धर है। कामरूपी सर्पसे मैं डसा हुआ हूं। मेरे ऐसा दीन पुरुष इस महान पदको कैसे धारण कर सकेगा? तथा यदि मैं गुरु वाक्यका अनादर करके दीक्षा धारण न करूं तो मेरे बड़े भाईको बहुत लज्जा आयगी। इस तरह दोनों पक्षकी बातोंको विचार कर शल्यवान होकर यह सोचने लगा कि दोनों बातोंमें कौनसी बात करने योग्य है, कौनसी करने योग्य नहीं है, यही स्थिर किया कि इस समय तो मुझे जिन दीक्षा लेना ही चाहिये, फिर कभी अवसर होगा तो मैं अपने घर लौट आऊंगा।

भवदेवको मुनिदीक्षा।

इस तरह कपट सहित वह भवदेव नतमस्तक होकर मुनि महाराजको कहने लगा कि—स्वामी! कृपा करके मुझे अर्हंत दीक्षा प्रदान कीजिये। मुनिराजने अवधि ज्ञानरूपी नेत्रसे यह जान लिया कि यह ब्राह्मण अपने मनके भीतरी अभिप्रायको छिपा रहा है। भोगोंकी अभिलाषा रखते हुए भी दीक्षा लेना चाहता है, यह भी जाना कि यह भविष्यमें वैरागी हो जायगा ऐसा समझकर महामुनिने मुनिदीक्षा प्रदान करदी। भवदेवने सर्वके समक्ष निग्रन्थ दीक्षा धारण करली तौ भी उसका मन कामकी अग्निरूपी शल्यसे रहित नहीं हुआ। उसके मनमें यह बात खटकती रही कि मैं कब उस तरुणी, चंद्रमुखी, मृगनयनी अपनी भार्याको देखूं जो मेरेपर मोहित हैं व मेरे विना दुःखी होगी, मेरा स्मरण भले प्रकार करती होगी, मेरे विना उसका चित्त सदा व्याकुल रहेगा। ऐसा मनमें चिंतवन करता रहता था तौ भी बराबर ध्यान, स्वाध्याय, ज्ञान, तप व व्रतमें लगा रहता था।

भवदेवका पत्नी प्रति गमन।

बहुत काल पीछे एक दिन संघसहित सौधर्म गणी विहार करते हुए फिर उस वर्द्धमान नगरमें पधारे। सर्व ही संयमी मुनि नगरके बाहर उपवनके एकांत स्थानमें ठहर गए। जब अनेक मुनि शुद्धात्माके ध्यानकी सिद्धिके लिये कायोत्सर्ग तप कर रहे थे तब भवदेव मुनि पारणा करनेके छलसे नगरकी तरफ चला। उसका चित्त इस

बातमें उत्सुक होरहा था कि शीघ्र अपनी स्त्रीको देखूं। मार्गमें चलते हुए कामभावसे पीड़ित हो यही विचारता रहता था कि आज मैं घर जाकर मनोहर पत्नीका संभोग करूंगा, मेरे बिना विरहसे वह इसी तरह आतुर होगी जिस तरह जलके बिना मछली तड़फड़ती है। इसतरह चिंतवन करते हुए मार्गमें क्रमसे चलकर उसने ग्राममें प्रवेश किया।

भवदेव मुनि संध्याके समय लाल रङ्ग सहित सूर्यके समान था, जो रात्रि होनेके पहले पश्चिम दिशाको जारहा हो। ग्राममें आकर उसने एक सुन्दर व ऊंचे जिनमंदिरको देखा। ऊंचे तोरणोंसे वह सुशोभित था, ध्वजाओंसे अलंकृत था, रत्न और मोतियोंकी मालाओंसे अतिशय सुशोभित था। मंदिरमें गाना बजाना व महाउत्सव होरहा था। स्त्रियां जातीं व आतीं थीं। भवदेव मुनि मंदिरके भीतर गया और तीन प्रदक्षिणा देकर भक्तिपूर्वक श्री जिनेन्द्रकी शांत मूर्तिको नमस्कार किया और अपने योग्य स्थानमें बैठ गया।

स्वपत्नी आर्यिकासे भवदेवकी भेट।

उस चैत्यालयमें एक प्रसिद्ध आर्यिका व्रतसे पूर्ण विराजमान थी। तपके कारण जिसके शरीरकी हड्डियां रह गईं थीं। मुनिराजका दर्शन करके उसने आकर नमस्कार किया फिर आर्यिकाजीने निवेदन किया—महाराज! आपके ज्ञानमें, ध्यानमें व स्वभावमें भलेप्रकार कुशलता है? मुनिराजने भी यथायोग्य आर्यिकाके व्रतोंकी कुशल पूछी। कुछ देर पीछे मनमें विषयकी इच्छा रखनेवाले भवदेव मुनिने

समभावसे आर्यिकाकी ओर देखके कहा कि–हे आर्ये ! इस नगरमें आर्यावसु ब्राह्मणके दो विद्वान् सर्वसम्मत प्रसिद्ध पुत्र थे। बड़ेका नाम भावदेव व छोटेका नाम भवदेव था। भवदेव वेदपारगामी व वक्ता था। हे पवित्रे ! यदि तुम जानती हो तो कहो, मेरे मनमें संशय है वह दूर होजाय कि वे दोनों किसतरह रहते हैं, अब उनकी क्या अवस्था है ?

सुचारित्रवती व निर्विकार भावको रखनेवाली आर्यिकाजीने कहा कि वे दोनों ब्राह्मण काल आदि लब्धिके योगसे मुनि होगए हैं। यह सुनकर आतुरचित्त भवदेव फिर प्रश्न करने लगा, मानो अपने मनके छिपे हुए अभिप्रायको उगल रहा है। हे आर्ये ! एक संशय और है सो मैं पूछता हूं, क्योंकि महान पुरुषोंके मनमें भी संशयका होना दूषित नहीं है। भवदेवकी विवाहिता स्त्री जो नागवसू थी वह पतिके चले जानेसे अब किसतरह है ? विकार सहित इस वचनको सुनकर उस आर्यिकाको विदित होगया कि यही मेरा पूर्वका भर्तार है, इसके मनमें भय पैदा होगया, शरीर कांपने लगा, वह विचारने लगी कि यह मूढ़बुद्धि धैर्य रहित है, कामांध है, दुःसह कामभावसे पीड़ित है, यह निश्चयसे मुनिपदको छोड़ना चाहता है, इसलिये धर्मानुराग-वश मुझे अब इसे अवश्य संबोधना चाहिये। कदाचित् यह कामी होकर सर्वथा भोगोंकी इच्छा करता है लेकिन मैं तो प्राणोंके अंत तक अपने व्रतमें दृढ़ रहूंगी, ऐसा सोचकर चारित्रवती व दृढ़ व्रतोंको पालने-वाली आर्यिका विनयसे मस्तक झुकाकर सरस्वतीके समान प्रिय वचन कहने लगी—

आर्यिकाका भवदेवको उपदेश।

हे स्वामिन्! आप पूज्य हैं, महान बुद्धिमान हैं, धन्य है जो आपने तीन लोकमें महान पुरुषोंको भी दुर्लभ ऐसे चारित्रको अंगीकार किया है। आप परम पवित्र मुनि हैं, इंद्रोंसे भी पूज्य हैं, आप मोक्षरूपी लक्ष्मीके स्वयंवर हैं, सर्व सम्पदाके निधान हैं। हे सौम्य! आपके समान ऐसा कौन है जो स्वर्गमें भी दुर्लभ ऐसे महानभोगोंको पाकर अपनी तरुण वयमें उनको त्याग देवे। वास्तवमें भोग प्रारम्भमें मीठे लगते हैं परन्तु उनका फल कडुवा होता है। ये भोग हालाहल विषके समान भवभवमें प्राणोंके हरनेवाले हैं। कहा है—

> प्रारंभे मधुराभासा विपाके कटुकाः स्फुटम्।
> हालाहलनिभा भोगाः सद्यःप्राणापहारिणः॥ २१६॥

ऐसा कौन मूर्ख है जो अमृतको छोड़कर विषकी इच्छा करेगा? सुवर्णको त्यागकर पत्थरको ग्रहण करेगा? कौन ऐसा अधम है जो स्वर्ग व मोक्षके सुखको छोड़कर नर्क जायगा। जिनेश्वरी दीक्षाको छोड़कर इन्द्रियोंके भोगोंकी कामना करेगा? इत्यादि नाना प्रकारके बोधप्रद वाक्योंसे श्रीमती आर्जिकाजीने समझाया तो मुनिका भाव पलट गया, लज्जासे मुख नीचा कर लिया। फिर वह कहने लगी कि आपने जिस नागवसूकी कामना करके प्रश्न किया था वह नागवसू आपके सामने मैं बैठी हूं। आप देखलें मैं आप मुनिराजके भोगने योग्य नहीं हूं। मेरा यह शरीर कृमियोंसे पूर्ण है। नव द्वारोंसे मल बहता है—महा अपवित्र है। मुखसे अपवित्र लार

बहती है। सिर खरबूजेके समान है। वचन सम्बन्ध रहित लड़खड़ाते निकलते हैं। शब्द भयानक अस्पष्ट निकलते हैं। दोनों कपालोंमें गड्ढे पड़ गए हैं। आंखें कूपके समान भीतरको गहरी होगई है।

बहुत क्या कहूं, ऐसे कुत्सित शरीरको धरनेवाली मैं आपके सामने बैठी हूं। मेरी भुजाओंका मांस सूख गया है। पयोधर पतित होगए हैं मानों प्रमादी सेवकोंके समान हैं। सर्व अंगमें चमड़ा हड्डी दिखरहा है। मैं अब सर्व कामकी इच्छारहित हूं। श्राविकाके व्रतोंमें तत्पर हूं। यह बड़े धिक्कारकी बात है, यह बड़ा दुर्भाग्य है जो आपने बारबार मुझे स्मरण करके शल्य सहित इतना काल, हे धीर! वृथा गंमाया है। निश्चयसे इस स्त्रीकी शरीररूपी कुटीमें कोई बात सुन्दर नहीं है इसलिये अपने मनको शीघ्र विरक्त करके शल्यरहित होकर उत्तम तपका साधन करो जिससे स्वर्ग व मोक्षके सुख प्राप्त होते हैं। सुखाभासको देनेवाले इन विषयभोगोंसे क्यों वृथा जन्म खोना? इस जीवने अनंतवार स्त्री आदि महान भोगोंको भोगा है और झूठनके समान छोड़ा है।

हे मुने! उनके भीतर अनुराग करनेसे क्या फल होगा? केवल दुःख ही मिलेगा। ऐसे धर्मरसपूर्ण वचन सुनकर मुनि महाराजका मन स्त्रीके सुखसे विरक्त होगया। कुछ लज्जावान होकर वह अपनेको वारवार धिक्कारने लगा। मुनि प्रतिबुद्ध होकर आर्यिकाजीकी वारवार प्रशंसा करने लगे। मैं भवदेव तेरे वचनोंके

संयोगसे उसी तरह निर्मल होगया जिस तरह अग्निके संयोगसे सुवर्ण निर्मल होजाता है।

हे आर्ये! तू धन्य है। मैं भवसमुद्रमें डूब रहा था, तू मेरे लिये आज नौकाके समान हुई है। तूने मुझे मोहके अगाध जलसे भरे हुए व सैकड़ों आवर्त व भ्रमणसे मुझे इस संसार-समुद्रमें डूबते हुए बचा लिया।

भवदेवका फिर मुनि होना।

इतना कहकर मुनि शीघ्र ही उठे और शल्य रहित होकर मुनिराजके निकट पहुंचे जैसे—चिरकालसे समुद्रके आवर्तमें पकड़ा हुआ जहाज छूटकर अपने स्थानको पहुंचे। मुनिनाथको नमस्कार करके व योग्य स्थानमें बैठकर भवदेवने अपना सर्व वृत्तान्त जो कुछ बीता था वह सब शुद्ध भावसे वर्णन कर दिया। उसी समय पूर्वकी दीक्षा छेदकर फिरसे उसने मुनिका संयम धारण किया। अब वह भावोंकी शुद्धिसे साक्षात् कर्मोंको जीतनेवाला यति होगया। कहा है—

छेदोपस्थापनं कृत्वा ततश्चेतः स संयमी।

जातः साक्षान्मुनिजता कर्मणां भावशुद्धितः ॥२१४॥

अब वह भवदेव मुनि रागद्वेषसे रहित होकर आत्मध्यानमें रत होगए। अपने बड़े भाईके साथ बराबर तप करते हुए रहने लगे।

अब वह भवदेव मुनि अपने शरीरमें भी राग रहित थे। केवल मुक्तिके संगमकी भावना थी। क्षुधा, तृषा आदि दुःखोंको समभावसे

सहन करते थे। शत्रु, मित्र, तृण, सुवर्ण, लाभ अलाभमें समभाव धारते थे, शांत थे, निंदाव स्तुतिमें भी निर्विकार थे। वह बुद्धिमान जीवन मरणमें भी समान भावके धारी थे। कहा है—

निःस्पृहः स्वशरीरेऽपि सस्पृहो मुक्तिसंगमे।
सहिष्णुः क्षुत्पिपासादिदुःखानां समभावतः॥ १३६॥
अरिमित्रतृणस्वर्णलाभालाभसमः शमी।
निंदास्तुतिसमो धीमान् जीविते मरणे समः॥ १३७॥

भावदेव भवदेव तीसरे स्वर्गमें देव।

अंतमें दोनों भ्राता मुनियोंने समाधिमरणपूर्वक विमलाचल पर्वतसे प्राण त्यागे तथा वे तीसरे सनत्कुमार स्वर्गमें सात सागरकी आयु धारक देव हुए। दोनों आत्माने शुभ योगसे पण्डितमरण किया। हे राजन्! इसतरह आर्यावसु ब्राह्मणके दोनों पुत्र व्रतोंके महात्म्यसे स्वर्गके सुखोंको भोगने लगे। जिस धर्मके प्रतापसे दो ब्राह्मण स्वर्गके देव हुए, उस धर्मका सेवन सज्जनोंको सुखकी सिद्धिके लिये सदा करना योग्य है।

तीसरा अध्याय।

जम्बूस्वामी पूर्वभव–भावदेव भवदेव छठे स्वर्गगमन।

(श्लोक १७२ का भाव)

कुबुद्धिरूपी अंधकारके नाशके लिये सुमतिधारी सुमतिनाथ तीर्थंकरको वंदना करता हूं। पद्मकमलके समान रक्तवर्ण देहधारी, सूर्यके समान तेजस्वी श्री पद्मप्रभु भगवानको मनवचन कायसे नमस्कार करता हूं।

देवगतिसे पतन।

हे मगधराज! भावदेव भवदेवके जीवोंने तीसरे स्वर्गमें सुख-समुद्रमें मगन होते हुए अपने सात सागरकी आयु पूर्ण करदी। एकदफे उन दोनों देवोंके आभूषणोंमें लगी निर्मल मणियां अपने प्रकाशमें उसी तरह मंद दीखने लगीं जिस तरह रात्रिके अंतमें दीपक मन्द तेज भासते हैं। उनके वक्षस्थलोंकी मालाएं मुरझाई हुई दिखने लगीं, मानों स्वर्गकी लक्ष्मीका वियोग होगा, इससे भय सहित शोच कर रही हैं। उनके विमानोंके कल्पवृक्ष कांपने लगे। मानों उनके वियोगरूपी महान पवनसे हिलते हुए घबड़ा रहे हैं। उनके शरीरकी ज्योति भी मंद पड़ गई। ठीक है जब पुण्यरूपी छत्र चला जाता है तब छाया कैसे रह सक्ती है? इन दोनोंके कुम्हलाए हुए शरीरोंको देखकर मणियोंकी कांति जाती रही। ये दोनों दीन होगए, इनकी दीनताको देखकर उनके सेवक देव भी दीन होगए। जब वृक्ष

हिलता है तब उसकी शाखाएं क्या विशेष नहीं हिलती हैं? इन दोनों देवोंने जो जन्मभर सुख भोगा था वही सब सुख इकट्ठा होकर दुःखरूपमें आगया। इन दोनों देवोंकी ऐसी अवस्था देखकर उनके संबंधी देव इनके शोकको दूर करनेके लिये सुंदर वचन कहने लगे:—

हे धीर! धैर्य धारण करो। शोच करनेसे क्या फल! सर्व प्राणियोंके जन्म, मरण, जरा, रोग व भय आते रहते हैं। यह साधारण विषय है कि जब देव आयुका क्षय होगा तब सर्व देवोंका देवगतिसे पतन होगा। उस पतनको कोई एक क्षण भी रोक नहीं सक्ता है।

जहां नित्य प्रकाश होता है वहीं नित्य अंधकार होता है, लोकमें दोनों बातें प्रगट हैं। जब पुण्यका दीप बुझ जाता है तब सर्व तरफ पापरूप अंधेरा छाजाता है। जैसे स्वर्गमें पुण्यके उदयसे निरंतर रतिभाव होता है वैसे ही पुण्यके क्षय होनेपर अरति भाव या दुःखित भाव होजाता है। पाप आतापके तपनेसे केवल शरीरके साथ रहनेवाली माला ही नहीं मुरझा जाती है; किन्तु शरीर भी मुरझा जाता है। पहले हृदय कांपता है फिर कल्पवृक्ष कांपता है। पहले शरीरकी शोभा गलती है फिर लज्जाके साथ शरीरकी कान्ति नष्ट होजाती है।

मरण निकट आनेपर जो दुःख देवोंको होता है वैसा दुःख नारकीको नहीं होता है। अब आप दोनोंके सामने मरणका समय आगया है। जिस सूर्यका उदय होता है उसका अस्त भी होता है इसीतरह जिसका स्वर्गमें जन्म है उसका मरण अवश्य है, इसीतरह

सम्पदा भी आती है व जाती है इसलिये आप शोक न करें। इस शोकसे कुगतिमें पतन होगा। आप आर्य हैं, सज्जन हैं, इस समय धर्मके पालनमें वृद्धि करनी चाहिये। इस तरह समझाये जानेपर उन बुद्धिमानोंको धैर्य आगया। वे दोनों सुखदातार जैन धर्ममें अपना प्रेम करने लगे।

देवोंने अंतमें धर्मभावना की।

देवगतिमें देवोंके इच्छाका निरोध नहीं होता है। ऐसा ही देवपर्यायका स्वभाव है। इसलिये वे देव इन्द्रियोंको रोककर व्रत लेनेको समर्थ नहीं है। वे दोनों देव श्री जिनमंदिरमें जाकर श्री जिन बिम्बोंकी पूजा भक्ति भावोंकी शुद्धिके लिये करने लगे। आयुके अंत समय वे दोनों कल्पवृक्षके नीचे बैठकर समाधान चित्त होकर प्रतिमायोगके साथ आत्मध्यानमें मगन होगए। बड़े भावसे णमोकार मंत्रका भय रहित हो स्मरण करने लगे। क्षणमात्रमें प्राण त्याग दिये। और उनका आत्मा अन्य भवको प्रयाण कर गया। शरीर अदृश्य होगए–उड़ गए।

इस जम्बूद्वीपके महामेरु पर्वतके पूर्व विदेहमें केवल चौथा काल रहता है, न पहला दूसरा तीसरा न पांचवा छठा काल होता है। उत्सर्पिणी अवसर्पिणी कालका परिवर्तन नहीं होता है। सदा ही तीर्थंकरोंकी उत्पत्ति होती है।

भावदेव भवदेवके जीव विदेहमें।

उनके चरणोंके विहारसे विदेह देश सदा पवित्र रहता है।

चक्रवर्ती, नारायण, प्रतिनारायण, बलभद्र उस रमणीक क्षेत्रमें सदा ही हुआ करते हैं। सदा ही कर्मभूमिकी रचना रहती है। देश धन-धान्यसे पूर्ण होता है।

उस विदेह क्षेत्रमें पुष्कलावती नामका देश है, जहां इतने पास पास ग्राम है कि एक ग्रामसे उड़कर मुरगा दूसरे ग्राममें चला जाता है। जगह जगह धान्यसे हरे भरे खेत दिखलाई पड़ते हैं। जगह २ जहां कमलोंसे पूर्ण जल सहित सरोवर हैं। उन कमलपत्रोंको देखकर स्त्रियोंकी आंखोंमें आंसू निकल पड़ते हैं। वहां बड़ी २ झीले हैं, जहां हंसोंकी ध्वनि होती है। मानों वे उन झीलोंके यश ही गान करते हैं। जिस देशमें ऐसे कूप हैं जिनसे खेत सींचनेकी नाली लगी है व बावड़ी ऐसी शोभती है मानों कमलके समान नेत्र हैं। वन वृक्षोंसे सघन हैं। बाजारोंमें जगह जगह सम्पदाएँ हैं—अन्नादिके ढेर हैं। स्वर्गपुरीके समान जहां ग्राम हैं। पुरुष बड़े सुन्दर व स्त्रियां उनसे भी अधिक सुन्दर हैं। वहां निरंतर सुख रहता है। उस देशका वर्णन कौन विद्वान् कर सक्ता है? मानों तीर्थंकरोंके दर्शनके लिये स्वर्ग ही चलकर यहां आगया है। इसदेशमें एक महान नगरी **पुंडरीकिणी** है, जो बारह योजन लम्बी व नौ योजन चौड़ी है। वहांकी भूमि बागीचोंकी पंक्तियोंसे शोभायमान है। नगरके चारों तरफ खाई पातालतक चली गई है। नगरका कोट इतना ऊंचा है कि आकाशको स्पर्श करता है। उस नगरके श्रावक तथा साधु जैन धर्ममें रत हैं। वे सब व्रतोंको पालते हैं व तीर्थोंकी यात्रा करते हैं।

जैसे झीलोंमें हंस कल्लोल करते हैं। कहा है:—

जैन धर्मरता यत्र श्रावका मुनयस्तथा।
रमंते व्रततीर्थेषु मराळा मानुसेष्विव ॥ ३७ ॥

जहां तपस्वी साधु सर्व परिग्रहके त्यागी भयरहित हैं, बाहरी उपवनोंमें बैठकर कठिन-कठिन तप करते हैं। जहां कितने ही भव्य जीवोंको कर्मोंके क्षयसे सदा अविनाशी केवलज्ञानका लाभ हुआ करता है। कितने ही भव्य जीवोंको सम्यग्दर्शनकी प्राप्ति होती रहती है। मानों रत्नत्रयकी उत्पत्तिके लिये वहांकी भूमि रत्नगर्भा है। स्वर्गादि सुखकी प्राप्तिके लिये वहांकी भूमि श्रेणीके समान है।

इस पुंडरीकिणी नगरीका राजा वज्रदन्त था। केवल उसके दांत ही वज्रके समान नहीं थे, किन्तु सारा शरीर वज्रमई था। अर्थात् वह वज्रऋषभनाराच संहननका धारी था। शत्रु उसकी प्रताप रूपी अग्निसे जल जाते थे इसलिये उसको दूरसे देखकर भाग जाते थे। उसकी पट्टरानी यशोधना थी, जो कामके बाणके समान थी, बड़ी ही सुन्दर थी। भावदेवका जीव जो तीसरे स्वर्गमें देव हुआ, आयुके अंतमें वहांसे चयकर इन दोनोंके पुत्र हुआ। उसके जन्मसे बन्धुओंको परम आनन्दकी प्राप्ति हुई, इससे उसका नाम सागरचन्द्र रक्खा गया। वह चन्द्रमाकी कलाके समान दिन पर दिन बढ़ता जाता था। उसी देशमें एक दूसरी महान् वीत-शोकापुरी थी, जहांकी भीतें चन्द्रकांत मणियोंसे निर्मापित थीं। जहांकी स्त्रियां उन भीतोंमें अपना प्रतिबिम्ब देखकर सौतकी भ्रांतिसे

रति कर्मसे विमुख हो जाती थीं। जहां युवती स्त्रियां पतियोंके साथ पर्वतोंपर क्रीड़ा करती थीं व कभी लतागृहोंमें रमण करती थीं। कभी वे महिलाएं पतियोंके साथ जलके स्थानोंपर जलकेलि करती थीं व कभी वे उपवनकी गलियोंमें सैर करती थीं।

उस नगरमें महापद्म नामका बलवान चक्रवर्ती राजा था। जिसके प्रतापकी कीर्ति तीन जगतमें फैली हुई थी। वह नव निधि व चौदह रत्नोंका स्वामी था। नौ निधियोंके नाम हैं—महापद्म, पद्म, शंख, मकर, कच्छप, मुकुंद, कुंद, नील व खर्व। चौदह रत्नोंके नाम हैं—सेनापति[1] गृहपति[2], पुरोहित[3], गज[4], घोड़ा[5], सूत्रधार[6], स्त्री[7], चक्र[8], छत्र[9], चर्म[10], मणि[11], कामिनी[12], खड्ग[13], दण्ड[14]। वह भरत क्षेत्रके छहों खण्डोंका अकेला स्वामी था। बत्तीस हजार मुकुटबद्ध राजा उसकी सेवा करते थे। छयानवे हजार स्त्रियोंका वह वल्लभ था। जैसे कमलनियोंके प्रफुल्लित करनेको सूर्य होता है वैसे वह उन स्त्रियोंको प्रसन्न रखता था। उस चक्रवर्तीकी एक पत्नीका नाम वनमाला था। वह देवी रतिकर्ममें दिव्य औषधिके समान थी।

इस वनमालाके गर्भमें भवदेवका जीव आया। शुभ दिवस व नक्षत्रमें उसका जन्म हुआ। चक्रवर्ती पुत्रके जन्मसे प्रसन्न हुआ। जन्मका उत्सव किया। याचकोंको उनकी इच्छानुकूल सुवर्णादि दिये। बाजोंकी ध्वनिसे दिशाएं बहरी होगई। मंगलगान होने लगे। अप्सराएं नृत्य करने लगीं। भाट लोग गद्यपद्य रचनासे यशगान करने लगे। पुष्प सुगंधसे मिश्रित चन्दनसे मानवोंको चर्चित किया गया। पुत्रके

मुखको देखकर चक्रवर्तीको ऐसा हर्ष हुआ जैसे धातुवादी वैद्य यनका काम करके प्रसन्न होता है। चक्रवर्तीने बंधु वर्गोंके मिलकर उसका नाम शिवकुमार रखा। जैसा नाम था वैसा ही वह गुण रखता था। यह शिव करनेके लिये कुमार ही था।

वह बालक प्रतिदिन माताका दूध पानकर बढ़ता गया। जैसे बाल चंद्रमाकी कला बढ़ती जाती है। शिशुवयमें केवल माताहीकी गोदमें नहीं रमता था, किन्तु बन्धुजन भी अपने हाथोंसे रमाते थे।

शिवकुमारका विद्याभ्यास, विवाह व गृहीसुख।

क्रमसे शिवकुमार आठ वर्षका होगया। तब व्याकरण साहित्यादि शास्त्रोंको अर्थ सहित पढ़ने लगा। शस्त्रविद्या सीखी, संगीत व नाटक भी सीखा। पृथ्वीकी रक्षा करनेको समर्थ वीर गुणधारी हो गया। चक्रवर्तीने बड़े उत्सवके साथ उसका विवाह पांचसौ कन्याओंके साथ किया। अब वह कुमार युवावयमें अपने योद्धागण व मंत्रियोंके मध्यमें ऐसा शोभता था, जैसे चन्द्रमा नक्षत्रोंके मध्यमें उनकी कांतिको जीतता हुआ शोभता है। वह चक्रवर्तीका पुत्र कभी तो मित्रोंके साथ गान व चर्चा करता था, कभी वादित्र बजाता था, कभी वैद्योंके साथ, वीरोंके साथ, ज्योतिषियोंके साथ नाना विरोधी विषयों पर तर्कवाद करके आनंद भोगता था। कभी कवियोंकी मंडलीमें कविता करता था, कभी नाटक खेलता था, कभी युवानोंके साथ पर्वतपर क्रीड़ा करता था, कभी वन उपवनोंके मार्गोंमें घूमता था, कभी नदियोंके तटोंपर रमता था, कभी अपनी स्त्रियोंके

सरोवरोंमें जलक्रीड़ा करता था, कभी अपनी स्त्रियोंके साथ क्रीडा करता था, कभी कोई स्त्री अभिमानसे रूठ जाती थी तो उसको मनाकर राज़ी करता था। कभी वह पवित्र जिनमंदिरमें जाकर भावोंको शुद्ध करके जल चन्दनादि सामग्रीसे जिनबिम्बोंकी पूजा करता था। कभी श्री गुरुओंके पास जाकर सुखकारी धर्मको सुनता था। इस प्रकार युवानीमें शिवकुमार अपना समय हर्षपूर्वक बिताता था।

उधर पुंडरीकिणीनगरमें भावदेवका जीव सागरचन्द्र भी भोग-समुद्रमें मग्न रहता था। एक दफे पुंडरीकिणीनगरके उद्यानमें तीन गुप्तिधारी व चार ज्ञानसे विभूषित त्रिगुप्ति नामके मुनिराज पधारे। तब नगरके सब लोग मुनिकी वन्दनाके लिये गए। ऐसा देखकर सागरचंद्र भी मुनिराजके निकट गया, तब नगरनिवासियोंने विनय सहित धर्मका स्वरूप पूछा। मुनिराजने उपदेश किया। अवसर पाकर सागरचंद्रने अपने पूर्वभवका हाल जानना चाहा। तब मुनि-राजने अवधिज्ञानके नेत्रसे जानकर कहा—हे वत्स! तू महाभाग्यवान है। अपने पूर्वभवका चारित्र सुन—

इस जंबूद्वीपके भरतक्षेत्रके मगधदेशमें वर्द्धमानपुर रमणीक था। वहां वेदके ज्ञाता दो विद्वान् ब्राह्मणपुत्र रहते थे। एक तो तुम भावदेव थे, दूसरा तुम्हारा छोटाभाई भवदेव था। एक दिन सौधर्म मुनिराजके समक्ष भावदेवने गृहारम्भसे विरक्त होकर तप स्वीकार कर लिया। किन्तु भवदेव कितने ही काल घरमें ही रहा।

भावदेव प्रमाद रहित हो तप करते थे। कुछ काल पीछे भावदेव उसी नगरमें गए और धर्मानुरागसे छोटे भाईके समझानेको उसके घर गए। धर्मोपदेश देकर उसे गुरुके पास ले आए।

भवदेवने शुद्ध-बुद्धि होनेपर भी शल्यसहित लज्जासे गुरुके पास दीक्षा लेली। जब किसी कारणसे उसकी शल्य दूर होगई। तब वह मुनिराजके साथ २ चारित्रको पालता हुआ चारित्रका भंडार होगया। भावदेव भवदेव दोनों मुनिचारित्रको पालते हुए, अंतमें समाधिमरणपूर्वक प्राण त्याग कर तीसरे सनत्कुमार स्वर्गमें देव हुए। वहां उपपाद शय्यामें अंतर्मुहूर्तमें पूर्णयौवनवान होकर उठे और सात-सागरपर्यंत मनोहर भोगोंको विना किसी विघ्न बाधाके भोगते रहे। आयुके अंतमें भावदेवके जीव तुम सो वज्रदंत राजाके घरमें सागरचंद्र पैदा हुए। और भवदेवका जीव चक्रवर्तीके घरमें शिवकुमार नामका पुत्र हुआ है जो सूर्यके समान तेजस्वी है। तुम्हारे दर्शन मात्रसे उसको अपने पूर्वभवका स्मरण होजायगा और वह संसार शरीर भोगोंसे विरक्त होजायगा।

इसतरह कुमारने मुनिराजसे अपने पूर्वभव सुने। संसारको असार जानकर अपना मन धर्मसाधनमें तत्पर कर दिया। वह विचारने लगा कि इस जगतमें सर्व ही प्राणी जन्म, मरण, जराके स्थान हैं। इस जगतके भोगोंमें कुछ सार नहीं है, सार यदि कुछ है तो वह मुक्तिके सुखको देनेवाला दयामई जैनधर्म है। उसी धर्मकी सेवासे इन्द्रियोंके व कषायोंके मदको वमन किया जासक्ता है। जो कोई

आत्मीक सुखको चाहता है उसे इसी जैन धर्मका सेवन करना चाहिये। कहा है—

सारोऽस्त्यत्र दयाधर्मो जैनो मुक्तिसुखप्रदः।
स चेन्द्रियकषायाणां दुर्मदे दमनक्षमः ॥ ९५ ॥

सागरचन्द्का मुनि होना।

इस तरह विद्वान सागरचन्द्रने विचार कर श्री मुनिराजके पास जिनेन्द्रकी मुनि दीक्षा धारली। यह सुख दुःखमें, शत्रु मित्रमें, महल मशानमें, जीवन मरणमें समभावका धारी होगया। परम शांत होगया। बाह्य और अभ्यन्तर बारह प्रकारका तप बड़े यत्नसे करने लगा। परीषह व उपसर्गोंके पड़नेपर भी अपने मनको समाधिसे चंचल न कर सका। ध्यानमें स्थिर रहा। तपके साधनसे उसको चारण ऋद्धि सिद्धि होगई, वह श्रुतकेवली होगया। एक दफे विहार करते हुए वे सागरचन्द्र मुनि वीतशोकापुरीमें पधारे।

मध्याह्न कालमें (अर्थात् ९ से ११ के मध्य) ईर्यापथकी शुद्धिसे वह नगरमें विधिपूर्वक विनयसे पारणाके लिये गए। राज-महलके निकट किसी सेठका घर था। उस सेठने शुद्ध भावोंसे आहार दिया। मुनिराजने नवकोटि शुद्ध मासको शांतिपूर्वक ग्रहण किया। मन वचन कायसे कृत कारित अनुमोदना रहितको नवकोटि शुद्ध कहते हैं।

मुनिराज ऋद्धिधारी थे। मुनिदानके महात्म्यसे दातारके पवित्र घरके आंगणमें आकाशसे रत्नोंकी वृष्टि हुई। इस बातको देखकर

वहांके सर्व जन परस्पर बातें करने लगे। यह क्या हुआ, सबको बड़ा ही आश्चर्य हुआ। परस्पर वादविवाद करनेपर बड़ा कोलाहल हुआ। शिवकुमारने अपने महलमें सब वृत्तान्त सुना। वह महलके ऊपर आया और आनन्दसे कौतुकपूर्वक देखने लगा। मुनिराजका दर्शन करके चित्तमें आश्चर्यपूर्वक विचारने लगा। अहो! मैंने किसी भवमें इन मुनिराजका दर्शन किया है। पूर्व जन्मके संस्कारसे मेरे मनमें स्नेह भर गया है और बड़ा ही आल्हाद होरहा है। इसलिये मैं जाऊं और अपना संशय मिटानेके लिये मुनिराजसे प्रश्न करूँ।

शिवकुमारको जाति स्मरण।

ऐसा विचारता ही था कि इतनेमें उसको पूर्वजन्मका स्मरण होगया। उसी समय पूर्वजन्मका सब वृत्तान्त जानकर उसने यह निश्चय कर लिया कि यह मेरे पूर्वभवके बड़े भाई हैं। आप यह तपस्वी महामुनि हैं। इन्होंने ही कृपा करके मुझे धर्ममें स्थापित किया था। उस धर्मके साधनसे पुण्य बांधकर पुण्यके उदयसे मैं परम्परा सुखको पाता रहा हूं। मैंने तीसरे स्वर्गमें देव होकर महान भोग भोगे और अब सर्व सम्पदासे पूर्ण चक्रवर्तीके घरमें जन्मा हूं। यह मेरा सच्चा भाई है, इस लोक पर लोकका सुधारनेवाला है। इस तरह बुद्धिमान शिवकुमारने पूर्वभवका सर्व वृत्तान्त स्मरण किया और उसी क्षणमें मुनिराजके निकट आगया। मुनिवरको देखकर शिव-कुमारकी आंखोंमें प्रेमसे आंसू निकल आए। जैसे वह मुनिराजके पास गया, प्रेमके उत्साहके वेगसे वह मूर्छित होगया।

चक्रवर्तीने जब यह सुना कि शिवकुमारको मूर्छा आगई है

तब वह उसी क्षण आया और मोहसे आंसू भरकर रोने लगा। और यह कहने लगा—हे पुत्र! तूने यह अपनी क्या व्यवस्था की है। इसका क्या कारण है? शीघ्र भयहारी वचन कह! क्या अपनी स्त्रीके स्नेहसे आतुर हो लताके समान श्वास ले लेकर कांप रहा है। क्या किसी स्त्रीका नवीन अवलोकन किया है, जिसके संगमके लिये रुदन कर रहा है? क्या तुझे तरुणावस्थामें कामभावकी तीव्रता होगई है, जिससे आतुर हो जल रहा है? क्या किसी स्त्रीके वचनोंको व उसके गुणोंको स्मरण कर रहा है! इतनेमें सर्व नगरके मनुष्य आगए। देखकर व्याकुलचित्त होगए। दुःसह शोक पृथ्वीपर छागया। सबने अन्न पानी त्याग दिया। ठीक है, पुण्यवान पदार्थको कोई हानि पहुं-चती है तो सबको उद्वेग होजाता है।

फिर किसी उपायसे चेतनता आगई, मूर्छा टल गई। कुमार प्रातःकालके सूर्यके समान जागृत होगया। सर्व लोग पूछने लगे—हे कुमार! मूर्छा आनेका क्या कारण है? शीघ्र ही यथार्थ कह जिससे सबको सुख हो, चिंता मिटे। तब शिवकुमारने मंत्रीके पुत्र दृढ़रथको जो उसका मित्र था, एकांतमें बुलाकर अपने मनका सब हाल वर्णन कर दिया। ठीक है, चिंतारूपी गूढ़ रोगसे दुःखी जीवोंके लिये मित्र बड़ी भारी औषधि है, क्योंकि मित्रके पास योग्य व अयोग्य सर्व ही कह दिया जाता है। कहा है:—

चिंतागूढगदार्तानां मित्रं स्यात्परमौषधम्।
यतो युक्तमयुक्तं वा सर्वं तत्र निवेद्यते॥ १२५॥

शिवकुमारने मित्रसे अपना गूढ़ हाल कह दिया कि हे मित्र! मैं संसारके भोगोंसे भयभीत हुआ हूं। मैं नाना योनियोंके आवर्तसे भरे हुए महा भयानक इस दुस्तर संसार समुद्रसे पार होना चाहता हूं। उसके अभिप्रायको जानकर दृढ़वर्मने चक्रवर्तीको सर्व वृत्तांत कह दिया कि महाराज! शिवकुमार तप करना चाहता है।

शिवकुमारको वैराग्य।

हे महाराज! यह निकट भव्य है, शुद्ध सम्यग्दृष्टी है, यह राज्यसम्पदाको अपने मनमें तृणके समान गिनता है, यह आज बिलकुल विरक्त चित्त है, सर्व भोगोंसे यह उदासीन है, इसका जरा भी मोह न धनमें है न जीवनमें है। यह अपने आत्माके स्वरूपका ज्ञाता है, तत्वज्ञानी है, विद्वानोंमें श्रेष्ठ है। यह जैन यतिके समान सर्व त्यागने योग्य व ग्रहण करने योग्यको जानता है। इसका मन मेरु पर्वतके समान निश्चल है, यह परम दृढ़ है। किसीकी शक्ति नहीं है जो रागरूपी पवनसे इसके मनको डिगा सके। इसको इस समय पूर्व जन्मके संस्कारसे वैराग्य होगया है। इसका भाव सर्व जीवोंकी तरफ रागद्वेष शल्यसे रहित सम है, यह संशय रहित जिनदीक्षा लेना चाहता है।

चक्रवर्ती इन कठोर वज्रके घातके समान वचनोंको सुनकर चित्तमें अतिशय व्याकुल होगया। इसका मोहित हृदय बिंध गया। आंखोंमेंसे बलपूर्वक आंसुओंकी धारा बह निकली। गद्गद् वचनोंको दीन भावसे कहता हुआ रुदन करने लगा। मेरा बड़ा दुर्भाग्य है!

मैंने विचार कुछ किया था, दैवके उदयसे कुछ और ही होरहा है। जैसे कमलके बीचमें सुगंधकी इच्छासे बैठा हुआ भ्रमर हाथीद्वारा कमल मुखमें लेनेपर प्राण खो बैठता है। वह कहने लगा कि-हे पुत्र! तुझको यह शिक्षा किसने दी है? तेरी यह बुद्धि विचार-पूर्ण नहीं है। कहां तेरी बाल अवस्था व कहां यह महान् मुनिपदकी दीक्षा? यह कार्य असंभव है, कभी नहीं होसक्ता है। इसलिये हे पुत्र! इस साम्राज्यको ग्रहण करो जिसमें सर्व राजा सदा नमन करते हैं। देवोंको भी दुर्लभ महाभोगोंको भोगो!

शिवकुमारका उपदेश।

इत्यादि पिताके वचनोंको सुनकर उसने घरमें रहना स्वीकार किया तथा कोमल वाणीसे कहने लगा-हे तात! इस संसाररूपी वनमें प्राणी कर्मोंके उदयसे चारों गतियोंमें भ्रमण करते रहते हैं। कहीं भी निश्चल नहीं रह सक्ते। कभी यह जीव नारकी होता है। फिर कभी पशु होजाता है फिर मनुष्य होजाता है। कभी आयुके क्षयसे मरके देव होता है। इसी तरह देवसे नर व तिर्यंच होता है। हे तात! न कोई किसीका पुत्र है न कोई किसीका पिता है। जैसे समुद्रमें तरङ्गे उठती व बैठती हैं वैसे इस संसारमें प्राणी जन्मते व मरते हैं।

हे पिता! यह लक्ष्मी भी उत्तम वस्तु नहीं है। महा पुरुषोंने भोग करके इसे चंचल जान छोड़ दी है। यह लक्ष्मी वेश्याके समान चंचल है। एकको छोड़कर दूसरेके पास चली जाती है। इस लक्ष्मीका

विश्वास क्षण मात्र भी नहीं करना चाहिये। यह ठगनीके समान फसानेवाली है, व अनेक दुःखोंमें पटकनेवाली है। इन्द्रियोंके भोग सर्पके रमण समान शीघ्र ही प्राणोंके हरनेवाले हैं। यह जवानी जिसे भोगोंको भोगनेका स्थान माना जाता है, स्वप्नके समान या इन्द्रजालके समान विला जाती है, ऐसा प्रत्यक्ष भी दिखता है। तथा भूतकालके ज्ञानका स्मरण भी इसे देखकर होता है। यदि यह राज्यलक्ष्मी उत्तम थी तो महान ऋषियोंने क्यों इसका त्याग किया! पूर्वकालका चरित्र सुनाई पडता है कि पहले बड़े बड़े ज्ञानी श्रीमान् ऐश्वर्यवान होगए हैं, उन्होंने सर्व परिग्रह व राज्यको त्यागकर मोक्षके लिये तप स्वीकार किया था। हे तात! ये भोग भोगने योग्य नहीं हैं। ये वर्तमानमें मधुर दीखते हैं, परन्तु इनका फल या विपाक कडुवा है। इन भोगोंसे मुझे कोई प्रयोजन नहीं है।

धर्म वही है जहां अधर्म न हो, पद वही है जिसमें कोई आपत्ति न हो। ज्ञान वही है जहां फिर कोई अज्ञान न हो। सुख वही है जहां कोई दुःख न हो।

भावार्थ—वीतराग विज्ञान धर्म है, मोक्षपद ही उत्तम पद है, केवल ज्ञान ही श्रेष्ठ ज्ञान है, अतीन्द्रिय आत्मीक सुख ही सुख है। कहा है—

स धर्मो यत्र नाधर्मस्तत्पदं यत्र नापदः।
तज्ज्ञानं यत्र नाज्ञानं तत्सुखं यत्र नासुखम्॥ १५१॥

बुद्धिमान् चक्रवर्ती इस तरह बोधप्रद पुत्रके वचनोंको सुनकर

पुत्रके मनकी बातको ठीक ठीक जान गया। उसको निश्चय होगया कि यह मेरा पुत्र संसारसे भयभीत है, वैराग्यसे पूर्ण है, यह अपना आत्महित चाहता है, यह अवश्य उग्र तप ग्रहण कर मोक्षको प्राप्त करेगा, ऐसा जानकर भी मोहके उदयसे चक्रवर्ती कहने लगा—हे पुत्र! जैसी तुम्हारी दया सर्व प्राणियों पर है वैसी दया मुझपर भी करो। सौम्य! एक बुद्धिमानीकी बात यह है कि जिससे तुम्हें तपकी सिद्धि हो और मैं तुम्हें देखता भी रहूं इसलिये हे पुत्र! घरमें रहकर इच्छानुसार कठिन २ तप व्रत आदि अपनी शक्तिके अनुसार साधन करो।

शिवकुमार घरमें ब्रह्मचारी।

हे पुत्र! यदि मनमें रागद्वेष नहीं है तो वनमें रहनेसे क्या? और यदि मनमें रागद्वेष है तो वनमें रहनेका क्लेश वृथा है। इत्यादि पिताके वचनोंको सुनकर शिवकुमारका मन करुणाभावसे पूर्ण होगया। वह कहने लगा—हे तात! जैसा आप चाहते हैं वैसा ही मैं करूँगा। उस दिनसे कुमार सर्व संगसे उदास हो एकांतमें घरमें रहने लगा, ब्रह्मचर्य पालने लगा, एक वस्त्र ही रखा, मुनिके समान भावोंसे पूर्ण व्रत पालने लगा। वह रागियोंके मध्यमें रहता हुआ भी कमल पत्तेके समान उनमें राग नहीं करता था। अहा! यह सब सम्यग्ज्ञानकी महिमा है। महान् पुरुषोंके लिये कोई बात दुर्लभ नहीं है। कहा है—

कुमारस्तद्दिनान्नूनं सर्वसंगपराङ्मुखः।
ब्रह्मचार्येकवस्त्रोऽपि मुनिवत्तिष्ठते गृहे॥ १९०॥

अकामी कामिनां मध्ये स्थितो वारिजपत्रवत् ।
अहो ज्ञानस्य माहात्म्यं दुर्लभ्यं महतामपि ॥ १६१ ॥

कभी वह एक उपवास करके पारणा करता था, कभी दो दिनके पीछे, कभी एकपक्ष, कभी एक मासका उपवास करके आहार करता था । वह शुद्ध प्राशुक आहार, बहुधा जल व चावल लेता था । जिसमें कृत व कारितका दोष न हो ऐसा आहार दृढ़धर्म मित्र द्वारा भिक्षासे लाया हुआ ग्रहण करता था । (नोट—ऐसा मालूम होता है दृढ़धर्म मित्र भी क्षुल्लक होगया था । वह भिक्षासे भोजन लाता था । उसे ही दोनो ग्रहण करते थे । एक या अनेक घरोंसे लाया हुआ भोजन लेना क्षुल्लकोंके लिये विधिरूप था । कहा है—

प्राशुकं शुद्धमाहारं कृतकारितवर्जितम् ।
आदत्त भिक्षयानीतं मित्रेण दृढवर्म्मणा ॥ १६३ ॥

उस कुमारने घरमें रहते हुए भी तीव्र तपकी अग्निमें काम, क्रोधादिकको ऐसा जला दिया था कि वे भाग गए थे, फिर निकट नहीं आते थे । इस तरह शिवकुमार महात्माने पापसे भयभीत होकर चौसठ हजार वर्ष ६४००० वर्ष तप करते हुए पूर्ण किये । आयुका अन्त निकट देखकर वह नग्न दिगम्बर मुनि होगया । उसने इन्द्रि-योंको जीतकर चार प्रकारके आहारका त्याग कर दिया । इस तपके करनेसे शुभोपयोग द्वारा बांधे हुए पुण्यके फलसे वह छठ्ठे ब्रह्मोत्तर स्वर्गमें अणिमादि गुणोंसे पूर्ण विद्युन्माली नामका इन्द्र उत्पन्न हुआ । इसकी दश सागरकी आयु हुई । अब उसके पास वे चार महादेवी

विद्यमान हैं। वही विद्युन्माली यहांपर स्वर्गमें इंद्रके समान शोभ रहा है। यह सम्यग्दृष्टी है। इस सम्यग्दर्शनके अतिशयसे इसकी कांति मलीन नहीं हुई। (नोट–इससे सिद्ध है कि मिथ्यादृष्टी देवोंकी ही माला मुरझाती है, शरीरकी शोभा कम होती है, आभूषणोंकी चमक घटती है, परन्तु सम्यग्दृष्टी देवोंकी शोभा नहीं घटती है; क्योंकि उनके मनमें वियोगका दुःख व शोक नहीं होता है। सम्यक्तीको वस्तु स्वरूपके विचारसे इष्ट वियोगका व मरणका शोक नहीं होता है।) कहा है—

सोऽयं प्रत्यक्षतो राजन् राजते दिवि देवराट्।
नास्य कांतिरभूत्तुच्छा सम्यक्त्वस्यातिशायितः ॥१६९॥

सागरचन्द्र मुनिने भी व्रतमें तत्पर रहकर समाधिमरणपूर्वक शरीर छोड़ा। उसका जीव भी छट्ठे स्वर्गमें जाकर प्रतीन्द्र हुआ। वहां भी पंचेन्द्रिय सम्बन्धी नाना प्रकार सुखकी इच्छापूर्वक विना बाधाके दीर्घ कालतक भोग किया।

धर्मके फलसे सुख होता है, उत्तम कुल होता है, धर्मसे ही शील व चारित्र होता है। धर्मसे ही सर्व सम्पदाएं मिलती हैं, ऐसा जानकर हरएक बुद्धिमान्को योग्य है कि वह प्रयत्न करके धर्मरूपी वृक्षकी सदा सेवा करे। कहा है—

धर्मात्सुखं कुलं शीलं धर्मात्सर्वा हि संपदः।
इति मत्वा सदा सेव्यो धर्मवृक्षः प्रयत्नतः ॥ १७२ ॥

चौथा अध्याय।

जम्बूस्वामीका जन्म व बालक्रीड़ा।

(श्लोक १६० का भावार्थ)

सर्व विघ्नोंकी शांतिके लिये प्रकाशमान सुपार्श्वनाथको वन्दना करता हूं। तथा चन्द्रमाकी ज्योतिके समान निर्मल यशके धारी श्री चंद्रप्रभ भगवानको मैं नमस्कार करता हूं।

चार देवियोंके पूर्वभव।

श्रेणिक महाराज विनय पूर्वक गौतम गणधरको पूछने लगे कि इस विद्युन्माली देवकी जो ये चार महादेवियां हैं वे किस पुण्यसे देवगतिमें जन्मी हैं, मेरे संशय निवारणके लिये इनके पूर्वभव वर्णन कीजिये। योगीश्वर विनयके आधीन होजाते हैं, इसलिये श्री गौतमस्वामीने उनका पूर्वभव कहना प्रारम्भ किया। वे कहने लगे-हे श्रेणिक! इसी देशमें चंपापुरी नामकी नगरी थी, वहां धनवानोंमें मुख्य सुरसेन सेठ था। उस सेठके चार स्त्रियां थीं। उनके नाम थे जयभद्रा, सुभद्रा, धारिणी, यशोमती। इन महिलाओंके साथ यह सेठ बहुत काल तक सुख भोगता रहा, जबतक पुण्यका उदय रहा। फिर तीव्र पापके उदयसे सेठका शरीर रोगमई होगया, एक साथ ही सर्वरोगोंका संयोग होगया। कास, श्वास, क्षय, जलोदर, भगंदर, गठिया आदि रोग प्रगट होगए। जब शरीरमें रोग बढ़ गए तब शरीरकी धातुएं विरोधरूर होगई। उस सेठके भीतर अशुभ वस्तुओंकी तीव्र अभिलाषा पैदा होगई। रोगी होनेसे उसका ज्ञान भी मंद होगया। वह

अपनी स्त्रियोंको मुट्ठीसे व लकड़ीसे मारने लगा। वह दुर्बुद्धि अकस्मात् भ्रांतिवान् होगया। मस्तिष्क बिगड़ गया। खोटे दुष्ट बचन कहने लगा—तुम्हारी पास कोई जार पुरुषको खड़े देखा था। फिर कभी देखूंगा तो तुम्हारे नासादिको छेद डलूंगा व प्राण ले लूंगा। इत्यादि कर्णभेदी शस्त्रके समान कठोर बचन स्त्रियोंको कहता था— पापके उदयसे रौद्रध्यानी होगया।

वे चारों बहुत दुःखी हुईं अपने जीवनको धिक्कार युक्त मानने लगीं। एक दफे वे तीर्थयात्राके लिये घरसे वनमें गईं। वहां श्री वासपूज्यस्वामीका महान् मंदिर था, उसको देखकर भीतर जाकर श्री जिनबिम्बोंके दर्शन करके मानने लगीं कि आज हमारा जन्म सफल हुआ है, आज हम कृतार्थ हुए। वहां मुनिराज विराजमान थे, उनके मुखारविंदसे धर्म व धर्मका फल सुना व गृहस्थ श्रावकके व्रत ग्रहण किये। व्रत लेकर वे घरमें लौट आईं। इतनेमें महापापी सूरसेनका मरण होगया।

तब चारोंने अपना सर्व धन अमर्बुद्धिसे एक महान् जिनमंदिर बनानेमें खर्च कर दिया। फिर वैराग्यवान होकर चारोंने गृहका त्याग करके आर्यिकाके व्रत धारण कर लिये। शास्त्रानुसार उन्होंने तीव्र तप किया। अतः शुभ भावोंसे पुण्य बांधकर उसी छठे ब्रह्मोत्तर स्वर्गमें देवियां पैदा हुईं और इस विद्युन्माली देवकी वे प्रणधारी महादेवियां होगईं।

श्रेणिक महाराज इस धर्मकथाको सुनकर बहुत ही प्रमुदित

हुए। फिर मनमें विचार किया कि एक और प्रश्न करें। स्वामी! आज आपने यह भी कहा था कि विद्युन्मालीका जीव जब मानव-भवको ग्रहण करेगा तब विद्युच्चर नाम चोर भी उनके साथ तप ग्रहण करेगा। यह विद्युच्चर कौन है, उसका क्या कुल है, चोरीकी आदत कैसे पड़ी, फिर वह मुनि कैसे होगा, विद्वद्वर! कृपा करके इसका सब वृत्तांत कहिये। मैं धर्मफलकी प्राप्तिके लिये विस्तार सहित सुनना चाहता हूं।

श्री महावीर तीर्थंकरके दयारूपी जलसे पूर्ण समुद्रके समान गंभीर श्री गौतमस्वामी कहने लगे-हे श्रेणिक! धर्मका अद्भुत महात्म्य है। तू श्रवण कर।

विद्युच्चरका वृत्तांत।

इसी मगधदेशमें हस्तिनागपुर नामका महान नगर है, जो स्वर्गपुरीके समान है। वहां संवर नामका राजा राज्य करता था। उसकी रानी प्रियवादिनी कामकी खान श्रीषेणा थी। उसका पुत्र विद्युच्चर पैदा हुआ। यह बहुत विद्वान होगया। जैसे जैसे कुमार अवस्था आती गई यह अनेक विद्याओंको सीख गया। इसको जो कुछ भी विज्ञान सिखाया जाता था, जल्दी ही सीख लेता था। रात दिन अभ्यास करनेसे कौनसी विद्या है जो प्राप्त न हो? यह शस्त्र व शास्त्र सर्व विद्याओंमें निपुण हो गया।

किसी एक दिन इसके भीतर पापके उदयसे यह खोटी बुद्धि उत्पन्न हुई कि मैंने चोरी करना नहीं सीखा, उसका भी अभ्यास

करना चाहिये, ऐसा विचारकर वह एक रात्रिको अपने पिताके ही महलमें धीरे २ चोरकी तरह गया। बड़ी बुद्धिमानीसे बहुत मूल्य रत्न उठा लिये। उन रत्नोंका बड़ा भारी प्रकाश था। जब वह लौटने लगा तब उसको किसीने देख लिया। इस दर्शकने सवेरा होते ही राजाके सामने कुमारकी चोरीका वृत्तांत कह दिया। सुनकर राजाने उसे उसी समय बुलवाया। कर्मचारी दौड़कर उसको ले आए। वह वीर सुभटके समान धैर्यके साथ सामने आकर खड़ा होगया। तब राजाने मीठी वाणीसे पुत्रको समझाया–हे पुत्र! चोरीका काम बहुत बुरा है। तूने यह चोरी किसलिये की? यदि तू भोगोंको भोगनेकी इच्छा करता है तो मेरी क्या हानि है। तू अपनी स्त्रियोंके साथ इच्छित भोगोंको भोग। जो वस्तु कहीं नहीं मिलेगी सो सब मेरे घरमें सुलभ हैं। जो तुझे चाहिये सो ग्रहण कर ले, परन्तु इस चोरी कर्मको तू न कर। यह बहुत निंद्य है, इसलोक व परलोकमें दुःखदाई है, सर्व संतापका कारण है, तू तो महान विवेकी है, ऐसे कामको कभी न कर।

पिताके ऐसे उपदेशप्रद वचनोंको सुनकर भी उसको शांति न मिली। जैसे ज्वरसे पीड़ित प्राणीको शक्करादि मिष्ट पदार्थ नहीं सुहाते हैं। वह दुष्ट चोरीका प्रेमी अपने पिताको उत्तरमें कहने लगा कि महाराज! चोरी कर्म व राज्यमें बहुत बड़ा भेद है। राज्यमें लक्ष्मी परिमित होती है। चोरी करनेसे अपरिमितका लाभ होता है। इन दोनोंमें समानता नहीं है। इसलिये चोरीके गुणको ग्रहण करना

उचित है। कर्तव्य व अकर्तव्यका विचार न करके पिताके वचनका उल्लंघन कर वह दुष्ट घरसे उदास होकर राजगृही नगरको चल दिया। वहां कामलता नामकी वेश्या बहुत सुंदर काम भावसे पूर्ण थी, उसके रूपमें आसक्त होगया। उस वेश्याके साथ इच्छित भोगोंको भोगने लगा। वह कामी विद्युच्चर चोर रात दिन चोरी करके जो धन लाता है वह सब वेश्याको दे देता है।

जम्बूस्वामी जन्मस्थान।

भगवान गौतमके मुखसे इस प्रश्नके उत्तरको सुन कर राजा श्रेणिक बहुत संतुष्ट हुआ। फिर प्रश्न करने लगा- हे भगवान्! आपने जो इस विद्युन्माली देवकी कथा कही थी, उसमें कहा था कि आजसे सातवें दिन यह इस पृथ्वीतलपर जन्मेगा, सो यह किस पुण्यवानके घरको अपने जन्मसे भूषित करेगा? जगतके स्वामीने उसके प्रश्नका यह समाधान किया कि इसी राजगृह नगरमें धन-सम्पन्न अर्हद्दास सेठ रहता है जो जैनधर्ममें तत्पर हैं। उसकी स्त्री स्वरूपवान जिनमती नामकी है, जो धर्मकी मूर्ति है, महान साध्वी है। जैसे उत्तम विद्या मानवको सुखदाई होती है, वैसे वह सुखको देनेवाली है। कहा है:—

तस्य भार्या सुरूपाढ्या नाम्ना जिनमती स्मृता।
धर्ममूर्तिर्महासाध्वी सद्विद्येव सुखावहा॥ ५१॥

उस जिनमतीके पवित्र गर्भमें पुण्योदयसे यह अवतार धारण करेगा। यह सम्यग्दर्शनसे पवित्र है। इसका आत्मा अवश्य मोक्ष-रूपी स्त्रीका स्वामी होगा।

वहां कोई यक्ष बैठा था, वह यह सुनकर आनंदसे पूर्ण हो नृत्य करने लगा। हे स्वामी! ऐ केवलज्ञानी! हे नाथ! जय हो, जय हो, आपके प्रसादसे मैं कृतार्थ होगया। मैंने पुण्यका फल पालिया। उसका कुल धन्य है, प्रशंसनीय है, जहां केवलीका जन्म हो, उस कुलमें सूर्यके समान केवलज्ञानसे वह प्रकाशित होगा। वही पवित्र देश है, वही शुभ नगर है, वही कुल पवित्र है, वही घर पावन है, जहां सदा धर्मका प्रवाह रहता है। कहा है:—

स एव पावनो देशस्तदेव नगरं शुभम्।
तत्कुलं तद्गृहं पूतं यत्र धर्मपरंपरा ॥ ५७ ॥

जम्बूस्वामी कुलकथा।

वह यक्ष अपने आसनपर खड़ा खड़ा बारबार हर्षसे नृत्य करने लगा। तब श्रेणिकने पूछा कि महाराज! यह यक्ष क्यों नृत्य कर रहा है? गौतम गणेशराज श्रेणिकसे कहने लगे-इसी नगरमें एक श्रेष्ठ वणिक् पुत्र था, जिसका नाम धनदत्त था जो सौम्यपरिणामी था व धनमें कुबेरके समान था। उसकी स्त्री सुन्दर गोत्रमती नामकी थी, उसके दो पुत्र थे। बड़ेका नाम अर्हद्दास जो बहुत बुद्धिमान् है। छोटेका नाम जिनदास था, जो चंचल बुद्धि था। पापके तीव्र उदयसे वह सर्व जुआ आदि व्यसनोंमें फंस गया। वह दुर्बुद्धि मांस खाने लगा, मदिरा पीने लगा, वेश्यासेवन करने लगा। पापी जुआ भी रमने लगा। उसका सर्व कर्म निंदनीय हो गया। इधर उधर दुःखदाई चोरीका कर्म भी करने लगा। अधिक क्या कहा जावे।

उसका आचरण सर्व बिगड़ गया। जगतमें प्रसिद्ध है, एक जूएके व्यसनमें फंसकर युधिष्ठिर आदि पांडुपुत्रोंने राज्यभ्रष्ट होकर महान दुःखोंको भोगा, परन्तु जो कोई इन सर्व ही व्यसनोंमें लोलुप होगा वह इस लोकमें आज व कल अवश्य दुःख भोगेगा व परलोकमें भी पापके फलसे दुःख सहन करेगा। कहा है:—

अहो प्रसिद्धिर्लोकेऽस्मिन् द्यूताद्धर्मसुतादयः।
एकस्माद्व्यसनाद्भ्रष्टाः प्राप्ता दुःखपरम्पराम् ॥ ६६ ॥
अयं सर्वैः समग्रैस्तु व्यसनैर्लोलमानसः।
अद्य श्वो वा परश्वश्च ध्रुवं दुःखे पतिष्यति ॥ ६७ ॥

इस तरह नगरके लोग परस्पर बातें करते थे। उसके जातिवाले उसको शिक्षा देनेके लिये दुर्वचन भी कहते थे।

इसतरह एक दिन जुआ खेलतेर जिनदास इतना सुवर्ण हार गया जितना उसके घरमें भी नहीं था। तब जीतनेवाले जुआरीने जिनदासको पकड़कर कहा कि शीघ्र मुझे जितना तूने द्रव्य हारा है, दे। जिनदास तीव्र धनकी हारसे आकुलित हो बिना विचार किये हुए कठोर वचनोंसे उत्तर देने लगा—तू चाहे जो बध बन्धन आदि करे, मेरे पास आज इतना सुवर्ण देनेको नहीं है। मैं अपने प्राणोंका अंत होनेपर भी नहीं दूंगा। जिनदासके वचन सुनकर वह क्षत्रिय जुआरी क्रोधमें भर गया। कहने लगा कि मैं आज ही सर्व सुवर्ण लूंगा, नहीं तो तेरे प्राण लूंगा। तू ठीक समझ—दूसरी गति नहीं होसक्ती। परस्पर लड़ाई झगड़ा होने लगा। बड़ा भारी कोलाहल होगया।

दुष्ट क्षत्रियने क्रोधके आवेशमें आकर अपनी तलवारसे जिनदासको मारा। वह जिनदास मूर्छा खाकर गिर पड़ा। तब वह क्षत्रिय अपनेको अपराधी समझकर भाग गया। इतनेमें नगरके बहुत लोग वहां देखनेको आगए। जिनदासका भाई अर्हदास भी आया। भाईको मूर्छित देखकर व्याकुल चित्त हो उसे यत्नपूर्वक अपने घरमें लेगया। शस्त्र वैद्यको बुलाकर उसकी चिकित्सा कराई परन्तु जिनदासका समाधान नहीं हुआ। ठीक है जब दुष्ट कर्मरूपी शत्रुका उदय होता है तब सब उपाय वृथा जाता है। जैसे दुर्जन पुरुषके साथ किया हुआ उपकार उसके स्वभावसे वृथा ही होता है। कहा है—

> चर्दिते दुष्टकर्मारौ प्रतीकारो वृथाखिलः।
> निसर्गतः खले पुंसि कृताप्युपकृतिर्यथा ॥ ७९ ॥

उसको ज्ञान देनेके लिये अर्हदास जैन सूत्रके अनुसार धर्म-भरी वाणी कहने लगा—हे भ्रात! इस संसाररूपी समुद्रमें मिथ्या-दृष्टी दुष्ट जीव सदा भ्रमण किया करता है, व महादुखोंको सहता है। इस जीवने संसारमें अनंतवार द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव, भाव इन पांच परिवर्तनोंको किया है। पापबंधके कारण भाव मिथ्यात, विषयभोग, कषाय व मनवचन कायके योग हैं, इनमें भी जूआ आदिके व्यसन तो दोनों लोकमें निन्दनीय हैं। जूआ आदिके व्यसनोंमें जो फंस जाते हैं उनको इसलोकमें भी वध बंधन आदि कष्ट होता है व परलोकमें महान असाताकर्म उदयमें आकर तीव्र दुःख होता है।

हे भाई! तूने प्रत्यक्ष ही द्युत कर्मका महान खोटा फल प्राप्त कर लिया। यह भी निश्चयसे जान, तू परलोकमें भी तीव्र दुःख पावेगा। अर्हदासके वचनोंको सुननेसे जिनदासका मन पापोंसे भयभीत होगया। रोगातुर होनेपर भी उसकी रुचि धर्मामृत पीनेमें होगई।

तब जिनदासने अर्हदासकी तरफ देखकर कहा कि वास्तवमें मैंने बहुत खोटे काम किये हैं। मैंने व्यसनोंके समुद्रमें मगन होकर अपना समय वृथा खो दिया। हे भाई! मैं अपराधी हूं, मेरा तू उद्धार कर। इस लोकमें जैसा तू मेरा सच्चा हितैषी बन्धु है वैसा हे धर्मात्मा! तू मेरी परलोकमें भी सहायता कर। अर्हदास भी जिनदासके करुणापूर्ण वचन सुनकर शुद्ध बुद्धि धारकर उसका धर्म साधन हो वैसा उपाय करने लगा। अर्हदासके उपदेशसे जिनदासने श्रावकके अणुव्रत ग्रहण कर लिये और तब समाधि-मरणसे मरके पुण्यके उदयसे यह यक्ष हुआ है। इसीलिये हे राजन्! मेरे वाक्योंको सुनकर यह नाच रहा है। इसके मनमें बड़ा हर्ष है कि मेरे वंशमें अंतिम केवलीका जन्म होगा, इसमें कोई संदेह नहीं है। यह विद्युन्मालीदेवका जीव अर्हदास सेठका पुत्र जन्मेगा और यही जम्बूस्वामी नामका धारी अंतिम केवली होगा।

हे राजन्! जम्बूस्वामीकी कथा बहेर मुनींद्र सत्धर्मकी प्राप्तिके हेतु वर्णन करेंगे। श्रेणिक महाराज इस प्रकार भगवानकी दिव्यवाणी सुनकर व अपने इच्छित प्रश्नोंका समाधान करके बहुत प्रसन्न हुआ। और घर लौटनेकी इच्छा करके श्री जिनेन्द्रकी स्तुति गद्य

व पद्यमें करने लगा। भगवत्‌के गुणोंका स्मरण किया। स्तुतिके कुछ वाक्य ये हैं—हे देव महादेव! जय हो, जय हो। केवलज्ञान नेत्रके धारी भगवानकी जय हो। आप दयाके सागर हैं, सर्व प्राणी मात्रके हित कर्तार हैं। हे देवाधिदेव! आपकी जय हो, आपने घातीय कर्मोंका नाश कर दिया है, आपने मोहरूपी योद्धाको जीतकर वीरत्व प्रगट किया है, आप धर्मरूपी तीर्थके प्रवर्तन करनेवाले हो। हे स्वामी! आपके समान तीन जगतमें कोई शरण नहीं है। हे विभु! जब तक मैं आपके समान न हो जाऊं, तब तक मुझे आपकी शरण प्राप्त हो। कहा है:—

यथा त्वं शरणं स्वामिन्नस्ति त्रिजगतामपि।
तथा मे शरणं भूयाद्यावत्स्यां त्वत्समो विभो॥ ९८॥

इस तरह स्तुति करके श्रेणिक राजा अपने नगरमें प्रयाण कर गया। घरमें रहते हुए वह श्रेणिक जिनेन्द्रकथित धर्मका पालन करने लगा। यह जिनधर्म, भावकर्म और द्रव्यकर्मका नाश करनेवाला है।

जम्बूस्वामीका जन्म।

राजा श्रेणिकको राज्य करते हुए कुछ काल बीत गया, तब श्री जम्बूस्वामीका जन्म हुआ था। अर्हद्दास सेठ राज्यश्रेष्ठी थे। राज्यकार्यमें मुख्य थे। उनकी स्त्री जिनमती सीताके समान शील-वती, गुणवती व रूपवती थी। दोनों दम्पति परस्पर स्नेहसे भीगे हुए सुखसे काल बिताते थे। यद्यपि वे गृहस्थके न्यायपूर्वक भोग करते थे, तथापि रात दिन जैन धर्ममें दत्तचित्त थे।

एक रात्रिको जिनमती सुखसे शयन कर रही थी, उसने रात्रिके पिछले पहर कुछ स्वप्न देखे। एक स्वप्न यह देखा कि जामुनका वृक्ष है, फलोंसे भरा हुआ है, भ्रमर गुंजार कर रहे हैं, देखनेसे बड़ा प्रिय दीखता है। दूसरा स्वप्न देखा कि अग्निकी ज्वाला जल रही है, परन्तु धूप नहीं निकलता है। तीसरा स्वप्न चावलका खेत फूला हुआ हराभरा देखा। चौथा स्वप्न कमल सहित सरोवर देखा। पांचवां स्वप्न तरङ्ग सहित समुद्र देखा। प्रातःकाल उठकर अपने पतिसे स्वप्नोंका हाल जानकर अर्हदासको बहुत आनंद हुआ। जैसे मेघोंको देखकर मोरनी शब्द करती हुई नाचती है वैसे ही सेठका मन हर्षसे पूर्ण होगया। वह उसी समय उठा, स्त्री सहित श्री जिन मंदिरजी गया। बारबार नमस्कार किया। श्री जिनेन्द्रोंकी भले भावोंसे पूजा की। फिर वह वैराग मुनीश्वरोंको प्रणाम करके स्वप्नोंका फल पूछने लगा—

हे स्वामी! आज रातको पिछले भागमें मेरी स्त्रीने कुछ शुभ स्वप्न देखे हैं, आप ज्ञाननेत्रधारी हैं! शास्त्रानुसार उनका क्या फल है सो कहिये। तब मुनिराजने कुछ देर विचार किया फिर कहने लगे कि—जम्बूवृक्ष देखनेका फल यह है कि कामदेव समान तुम्हारा पुत्र होगा। प्रज्वलित अग्निके देखनेका फल यह है कि वह कर्मरूपी ईंधनको जलाएगा। खेतके धान्य देखनेका फल यह है कि वह लक्ष्मीवान् होगा। कमलसहित सरोवर देखनेका फल यह है कि वह भव्यजीवोंके पापरूपी दाहकी संतापको शांत करनेवाला होगा। हे श्रेष्ठी! समुद्रके दर्शनका फल यह है कि वह

संसारसमुद्रके पार पहुंचेगा और भव्यजीवोंको सुख–प्राप्ति करानेके लिये धर्मामृतकी वर्षा करेगा। धर्मका फल सुनकर सेठको बहुत आनंद हुआ। मुनिवृन्दोंको मन वचन कायसे नमस्कार करके वह अपने घर आया। तब ही विद्युन्माली देवका जीव जिनमतीके गर्भमें पूर्व पुण्यके फलसे आगया था। गर्भाधान होनेपर जिनमतीका शरीर शिथिल रहने लगा। कोमल अंगमें पसिना आनेलगा। कुचका अग्र-भाग नीला होगया। स्तन व कपोल सफेद होगए। वह शिथिलतासे मिष्ट वचन भाषण करती थी। तो भी जैसे रत्नागर्भा पृथ्वी शोभती है वैसे शोभती थी। शिशुके गर्भमें रहते हुए त्रिवली भंग होगई, परन्तु चरमशरीरी जीवको उसके उदरमें रहते हुए कोई बाधा नहीं हुई। गर्भवती जिनमतीको सुखदाई शुभ दोहला उत्पन्न हुआ, कि मैं देव शास्त्र गुरुकी उत्तम भावसहित पूजा करूं, जिनबिम्बोंकी प्रतिष्ठा कराऊं, जीर्ण चैत्यालयोंका उद्धार करूं, चार प्रकार दान देऊं उसकी गाढ़ श्रद्धा पुण्यकर्मके लिये होगई।

सेठजीने दोहलेको जानकर हर्षित मनसे उसकी सर्व इच्छा पूर्ण की, बड़े उत्साहसे धन खर्च किया। उसके मनमें पुत्रके दर्शनकी तीव्र इच्छा थी। नौ मास पूर्ण होने पर जिनमतीने सुखसे महा तेजस्वी, महापवित्र पुत्रको जन्म दिया, मानो पूर्व दिशाने सूर्यका उदय कर दिया। फाल्गुन मासके शुक्लपक्षमें पूर्णिमाके शुभ दिनमें प्रातःकाल जम्बूस्वामीका जन्म हुआ।

आनंदसे गदगद सेठने बन्धुवर्ग व नगरवासियोंको बुलाकर जन्मका बड़ा उत्सव किया। स्वर्गमें दुन्दुभि बाजे बजे। स्वर्गसे

पुष्पोंकी वर्षा हुई। ठंडी, पुष्परजसे सुगंधित पवन चलने लगी। सर्व तरफ जय जयकार ध्वनि होने लगी, जो कानोंको प्रिय लगती थी व परमानंद होता था। मंगल गीतको जाननेवाली स्त्रियें गीत गाने लगीं। सुन्दर भृकुटी रखनेवाली व कुंकुमके समान लाल साड़ी पहने हुई भामिनीयें मंगल नृत्य हर्षसे करने लगीं। सेठके घरका आंगण सुंदर पताकाओंसे व मणिमाणिक्यकी शोभासे जिस शोभाको प्राप्त हुआ, उसका वर्णन कोई महान् कवि भी नहीं कर सक्ता है।

सेठने इतना दान दिया कि उसके धनका क्षय नहीं हुआ, धनके लेनेवालेकी कमी थी, उसको धन देनेमें कमी नहीं थी। इस तरह पुण्यात्मा सुन्दर जम्बूकुमार बड़े सुखसे व लाड़ प्यारसे पाला जाने लगा। मातापिताने बंधुओंकी सम्मतिसे जम्बूकुमार नाम रक्खा। सेठजीने उसके पोषणके लिए धाएं नियत कर दी थीं, जो बालकको स्नान करावे, शृंगार करावे, क्रीड़ा करावे। जब वह मुसकराता हुआ मणिकी भूमिको स्पर्श करता था तब मातापिता उसकी अद्भुत चेष्टा देखकर मुदित होजाते थे। उसका रूप देखकर जगतके लोगोंको बड़ा आनंद होता था। उसका शिशुपना चंद्रमाकी कलाके समान बढ़ने लगा।

जम्बूस्वामीकी शिशु वय।

इसके मुखरूपी चंद्रमाकी कांतिको बढ़ती हुई देखकर माता-पिताका संतोषरूपी समुद्र बढ़ता जाता था। जब यह मुखसे हंसता था तब ऐसा झलकता था कि इसका मुख सरस्वतीका सिंहासन है

व लक्ष्मीका घर है या कीर्तिरूपी वेलका विकास है। जब वह डग-मगाते हुए पगोंसे इन्द्रनील मणिकी भूमिपर चलता था, तब वह रक्त कमलोंकी शोभाको जीत लेता था। अपने समान वयधारी शिशुओंके साथ वह रत्न-धूलिमें क्रीड़ा करता हुआ मातापिताको प्रसन्न करता था। वह बाल चंद्रके समान था। अपने उत्तम गुणोंसे प्रजाको आनंददाता था। उसके अङ्गमें निर्मल यश व्याप्त था। बालावस्था उल्लंघन करके जब वह कुमार वयमें आगया तब उसका तेज इन्द्रसे पूज्यनीय होगया था। शरीर सुन्दर था, मीठी बोली थी, उसका दर्शन प्रिय था। जब वह मुसकराकर बातें करता था तब जगतके प्राणी प्रेमसे पूर्ण होजाते थे। वह अब सर्व कलाओंमें पूर्णमासीके चन्द्रमाके समान पूर्ण होगया। इस पुण्यवानको जगतकी सर्व विद्याएं स्वयं पूर्वजन्मके अभ्याससे स्मरण आगई। शिक्षा विना ही वह सर्व कलाओंमें कुशल था, सर्व विद्याओंमें चतुर था, सर्व क्रियाओंमें दक्ष था। वह बृहस्पतिके समान सर्व शास्त्रका ज्ञाता होगया। जैसे शरीर बढ़ता जाता था, गुण बढ़ते जाते थे। यह चरम शरीरी था। इसमें विशेष आरोग्य, सौभाग्य व सौंदर्य था।

जम्बूस्वामीकी कुमार क्रीड़ा।

कभी कभी यह सुन्दर लिपि लिखता व लिखाता था। गाना बजाना स्वयं करता व कराता था। मित्रोंके साथ छंद अलंकारके साथ वार्तालाप करता था। चित्र खींचने आदिकी कलाका जानने-वाला था। कभी कभी कवियोंके साथ काव्य चर्चा करता था।

कभी कभी वाद करनेवालोंके साथ किसी २ विषय पर वाद करता था। कभी गान मंडलीमें गीत गाता व सुनता था। कभी बाजा बजानेवालोंकी गोष्ठी करता था। कभी वीणाकी ध्वनि सुनता व सुनाता था। कभी करताल ध्वनिके साथ नृत्यकारोंका नृत्य कराता था। कभी गांधर्वके द्वारा गाए हुए गंगाजलके समान अपने निर्मल यशको सुनता था।

कभी वापिकाओंमें कुमारोंके साथ जाकर जलक्रीडा करता था, कभी पिचकारियोंमें जल भरकर जल छिड़कता था। कभी नंदन वनके समान वनोंमें जाकर कुमारोंके साथ वनक्रीड़ा करता था। इसतरह आठ वर्षका होनेपर भी सर्व प्रकार क्रीड़ा व विनोदमें निपुण था।

वह जंबूकुमार देवतुल्य था, इन्द्रादि देवोंसे पूज्यनीय था, सर्व गुणरूपी रत्नोंकी खान था, पवित्र मूर्ति था, पुण्यमयी अपने घरमें कुमारोंके साथ इच्छित क्रीड़ाओंको करता हुआ रहता था। वह कुमार राजकुमारोंके साथ क्रीड़ा करता हुआ चंद्रमाके समान शोभता था। उसकी छातीपर हार ऐसा झलकता था, मानों लक्ष्मीदेवीके झूलनेका हिंडोला है जिसके मोती तारोंकी चमकके समान चकमते थे।

जिस धर्मरूपी महान वृक्षके फलरूप पुण्यके उदयसे स्वर्गोंमें देव महान सुखको भोगते हैं व जिसके फलरूप पुण्यके उदयसे महान पुरुष तीर्थंकर, चक्रवर्ती, बलभद्र, नारायण प्रतिनारायण आदि उत्पन्न होते हैं, उस धर्मरूपी महावृक्षकी सेवा यत्नपूर्वक अन्य सत् पुरुषोंको भी करना योग्य है।

पांचवाँ अध्याय।

जम्बूकुमारकी वसंतक्रीडा व हाथीको वश करना।

(९६ श्लोकोंका भावार्थ)

यथार्थ विधिको बतानेवाले व धर्मतीर्थके कर्ता श्री सुविधि या पुष्पदंतनाथको तथा शांतिप्रद वाणीके कर्ता श्री शीतलनाथ भगवानको नमस्कार करता हूं।

जम्बूकुमारका रूप।

जम्बूकुमारका शरीर यौवनपूर्ण व मनोहर दीखता था जैसे शरदकी पूर्णमासीका चन्द्रमा ही हो। शरीर सुवर्ण रङ्गका था, कामदेवके समान रूपवान था, रोगरहित था। शरीरमें सुगंध आती थी, शरीरमें १०८ लक्षण थे। वज्रवृषभ नाराच संहनन था, समचतुर संस्थान था। वायु, पित्त, कफ सम्बन्धी कोई रोग नहीं थे। शरीर परमौदारिक शोभनीक था। उसके रूप लावण्य व यौवनको देखकर मानवोंके नेत्र रूपी भ्रमर कहीं और जगह नहीं रमण करते थे। उसके कामदेव समान रूपको देखकर नगरकी स्त्रियां कामकी पीड़ासे आकुलित थीं, नगरकी स्त्रियां उसके रूपको बार-बार देखना चाहती थीं, रूपको न देख कर आकुल होती थीं। कोई २ स्त्री रूप देखकर पागल सी होजाती थी, कोई लम्बे श्वांस लेने लगती थी। कोई पण्डिता स्त्री कुमारके रूपको स्मरण कर

चित्रपटके समान देखती रहती थी। कोई २ स्त्री घरके कार्यको छोड़ कर झरोखेमें आकर बैठती थी कि कुमारका रूप देखनेमें आजावे। कोई किसी बहानेसे घरसे बाहर जाकर जहां जम्बूकुमारका आना जाना रहता था उन बड़ी २ सड़कोंपर घूमती थी। कोई स्त्री मार्गमें देखतक कुमारका दर्शन न पाकर घरके कामकी चिंतासे आतुर हो लौट जाती थी। कोई २ तरुणी उसे देखकर ऐसा निदान करती थी कि अन्य जन्ममें मुझे ऐसा रूपवान पति होवै। उस कुमारके रूपको देखनेसे स्त्रियोंकी जो दशा होती थी उसे कवि वर्णन नहीं कर सक्ता है। वास्तवमें एक पुत्र अच्छा है, यदि वह गुणवान हो व अपने कुलका प्रकाश करनेवाला हो। कुलको कलंकित करनेवाले हजारों पुत्रोंसे क्या काम? कहा है—

सुपुत्रो हि वरं चैको स्वास्स्वकुलदीपकः।
न च भद्रं कुपुत्राणां सहश्रणि कुलद्विषाम् ॥ २० ॥

कुमारके गुणोंकी सम्पत्तिको सुनकर कितने ही सेठोंका मन होता था कि हम अपनी कन्या उसे व्याहें। उसी नगरमें एक सेठ जिनभक्त सागरदत्त रहता था। उसकी स्त्री सुन्दर पद्मावती थी, उसकी एक कन्या पद्मश्री थी। जिसका मुख कमलके समान प्रफुल्लित था, जो बड़ी सुंदरी थी, व नवयौवन पूर्ण थी।

वाणिज्यकारकोंमें श्रेष्ठ दूसरा सेठ धनदत्त था, उसकी सेठाणी सुंदरमुखी कनकमाला थी। इसकी पुत्री कनकश्री थी। जिसका स्वर कोयलके समान था, तप्तायमान सोनेके समान शरीरकी आभा थी, कर्णतक लम्बे नेत्र थे।

तीसरा एक धनवान व्यापार-शिरोमणि वैश्रवण सेठ था। उसकी भार्या विनयवती विनयमाला थी। उसकी कन्या विनयश्री थी जो कामकी ध्वजा थी। सुकुमार शरीरवाली थी व सुन्दर लक्षणोंको धरनेवाली थी। चौथा लक्ष्मीवान व्यापारी सेठ वणिकदत्त था। उसकी पतिव्रता स्त्री विनयमती थी। उसकी कन्या रूपश्री थी जो पूर्ण मनोहर थी। ये चारों ही कन्याएं नवयौवना थीं।

जम्बूकुमारकी सगाई।

चारों ही सेठ अपनी २ कन्याओंके लिये योग्य वरकी चिंतामें रहते थे। सर्वने यही सम्मति पक्की की कि हम अपनी कन्याएं जम्बूकुमारको विवाहेंगे। तब चारों ही सेठ अर्हदास सेठके घर पर आए और अपने मनका भाव प्रगट किया। हे श्रेष्ठी! आप धन्य हैं, तीन लोकमें माननीय हैं, आपके घरमें जगतको पवित्र करनेवाला महा पवित्र पुत्र श्री जम्बूकुमार है, वह जगतमें विख्यात है। हम चारोंकी प्रार्थनाको आप स्वीकार करें। हम अपनी कन्याएं आपके पुत्रको उचित जानके देना चाहते हैं। जम्बूस्वामी उनके भर्तार होनेको योग्य हैं। इससे परस्पर प्रीति बढ़ेगी। हमारा आपसे परस्पर मैत्रीभाव है ही। हम आपके आज्ञाकारी सेवकके समान हैं। उनके प्रेमपूर्ण वचन सुनकर अर्हदास सेठ मुसकरा दिये, और प्रसन्न हुये। भीतर जाकर जिनमतीसे कहा। जिनमती इस बातको सुनकर बहुत हर्षित हुई और इस बातको स्वीकार किया। पुत्रके विवाहके उत्सवकी इच्छा स्त्रियोंको स्वभावसे ही होती है।

जिनमतीकी सम्मति भी पाकर अर्हदास सेठने उन चारों सेठोंसे कह दिया कि आपकी इच्छानुसार ही कार्य होगा। अक्षय-तृतीया (वैशाख सुदी तीज) का दिवस विवाहके लिये नियत होगया। सेठने उन चारोंका बहुत सत्कार किया, फिर वे अपने घर चले गए। उस दिनसे अर्हदास सेठके व उन चारों सेठोंके घरोंमें मंगलगीत हुआ करते थे। वे विवाहके लिये सामग्री एकत्र करते थे। घरोंमें उत्तम चित्र रचवाते थे, धन धान्य सुवर्णादि वस्त्र अलंकार धन देकर खरीद करते थे। सबने अपने २ बन्धुवर्गोंको निमन्त्रण कर दिया था। चारों सेठोंको विवाह करनेका बड़ा ही उत्साह था।

वसन्तऋतुका आगमन।

इतनेमें ऋतुओंमें शिरोमणि वसन्तराजका आगमन हुआ। वृक्षोंके पुराने पत्ते गिर पड़े थे. नवीन पत्ते आगए थे। नीले कमल-पत्रके समान शोभते थे। फूलोंके द्वारा वह वसन्तराज अपने यशको बिस्तार रहा था। वनोंमें कोयलोंके शब्द होरहे थे, चारों तरफ सुगन्ध फैली हुई थी। मानों कामदेवने मोहित करनेको जाल ही बिछा दिया है। फूलोंकी गंधसे खिचकर भ्रमरोंकी पंक्तियां वनमें घूम रही थीं। वहां शीतल मंद सुगन्ध पवन चलती थी। वहां अशोक वृक्ष व चंपक वृक्ष शोभते थे। किंशुकके फूल शोभनीक थे। ऐसी वसन्तऋतुमें जम्बूकुमार अन्य कुमारोंको लेकर वनमें क्रीड़ा करनेको गए। उस समय नगरके लोग अपनी २ स्त्रियोंके साथ वनमें गए थे और वनकी क्यारियोंमें मनवांछित क्रीड़ा करते थे। एकदफे सर्वजन-

सरोवरमें स्नान करनेको गए। स्नान करके अपने डेरोंकी तरफ आरहे थे। मार्गमें परस्पर वार्तालाप कर रहे थे। कुछ लोग घोड़े और हाथियोंपर सवार थे। चारों तरफ बाजोंकी गंभीर ध्वनि होरही थी।

राजाके हाथीका छूटना।

वह भयंकर कोलाहल सुनकर श्रेणिक राजाका वह हाथी जो युद्धमें जाता रहता था, भयभीत होगया। सांकल तोड़कर क्रोधमें भरकर वनमें घूमने लगा। उसके कपोलोंसे मद झरता था, जिस पर भ्रमर गुंजार कर रहे थे। उसको देखकर व उसके भयंकर शब्द सुनकर सब जन भयभीत होगए। वह नील पर्वत समान काला था। कान जिसके हिलते थे, बड़ा भारी शरीर था, कालके समान था। आषाढ़ मासके मेघोंके समान था। बड़े २ दांतोंसे पृथ्वीको खोदता था। सूंड़से पानी लेकर फेंकता था। ऐसे हाथीके छूट जानेसे सारा वन भयानक भासने लगा। यह हाथी जिधर जाता था वृक्षोंको जड़मूलसे उखाड़ लेता था। वह वन इतना मनोहर था कि उस वनमें आम्र, जांबन, नारंगी, तमाल, ताल, अशोक, कदंब, सल्लकी, शाल, नीम्बू किसमिस, खर्जूर, अनार आदि फलोंके वृक्ष थे। चंपा, कुंद, मचकुंद आदिके सुगंधित फूल थे। नागरवेलादि सुंदर वेलोंके पत्तोंसे मनोहर था। इलायची, लवंग, सुपारी, नारियल, आदिसे पूर्ण था। मोर मोरिणीके शब्दोंसे गूंज रहा था, कोयलें मनोहर ध्वनि कर रही थीं। उस वनकी शोभा क्या कही जावे। देवगण भी जिसकी प्रशंसा करते थे।

उन्मत्त हाथीने सर्व वनको क्षणमात्रमें नाश कर दिया, जिस

तरह विषयोंके लोभमें फंसा हुआ मलीन मन पुण्यके वृक्षको नाश कर डालता है। सब लोग कायरतासे इधर उधर भागते थे, कोई हाथीके सामने नहीं आता था। कोई आकुलित चित्त हो अपनी स्त्रियोंके रक्षणमें लग रहे थे, जो बिचारी अधीर हो सावधानीसे नहीं चल सक्ती थीं। योद्धा लोग हाथीको बांधनेके लिये सामने जानेका साहस नहीं करते थे, मनमें विचारते थे, मालूम नहीं आज क्या होनेवाला है। बड़े २ योद्धा हाथीके गौरवको देखकर उत्साह रहित उद्यमरहित व उदास थे। राजा श्रेणिक भी सामने था, वह भी उस हाथीको पकड़ न सका। जम्बूस्वामी कुमार बड़े बलवान व वीर्यवान थे, वे अपने स्थान पर ही खड़े रहे, किंचित् भी भयसे हटे नहीं। उस हाथीको तृणके समान समझकर जम्बूकुमारने भयरहित हो धैर्यसे उसकी पूंछ पकड़ ली।

वास्तवमें वज्रके समान जम्बूकुमारकी हड्डियां थीं, वज्रके समान कीले थे, वज्रके समान नसोंका जाल था। इस कुमारको वज्र भी खंडित नहीं कर सक्ता था। कीट समान हाथीकी तो बात ही क्या है। हाथीने बहुत पुरुषार्थ किया कि कुमारके शरीरको बाधा पहुंचावे, परन्तु वह वज्र शरीरको किंचित् भी कष्ट नहीं देसका। वज्र शरीरधारी यदि हाथीको जीत ले तो इसमें कोई बड़ी बात नहीं है।

जंबूकुमारका हाथीको वश करना।

कुमारका साहस व बल अचिन्त्य था, उन्मत्त हाथीको कुमारने क्षणमात्रमें मद रहित कर दिया। वह कुमार उसके दांतोंपर पग

रखकर शीघ्र ही उसके ऊपर चढ़ बैठा और हाथीका मान चूर्ण करके उसको इच्छानुसार इधर उधर घुमाने लगा। तब सर्व ही महान पुरुषोंने जंबूकुमारका बड़ा ही सत्कार किया।

सब लोग कहने लगे—धन्य है कुमारका अदभुत बल! देखो जिसने देखते देखते एक क्षणमें भयानक हाथीको वश कर लिया। अहो पुण्यका बड़ा महात्म्य है! महान पुरुषोंके द्वारा यह पूज्य है। पुण्यके बलसे यश प्राप्त होता है। पुण्यसे विजय होती है। पुण्यसे सुख मिलता है। कहा है—

अहो पुण्यस्य माहात्म्यं महनीयं महात्मभिः।
येन हस्तगतं सर्वं यशः सौख्यमथो जयः॥ ८६॥

जम्बूकुमारका वीर्य देखकर श्रेणिक महाराजको आश्चर्य हुआ। नीतिनिपुण राजाने उस कुमारको बुलाकर अपने साथ अर्धे सिंहासनपर बिठाया, प्रसन्न मन हो बार बार कुमारकी प्रशंसा करने लगा व द्रव्योंसे व रत्नोंसे कुमारकी भक्तिपूर्वक पूजा की। राजा कहने लगा—हे महाभाग! तू धन्य है जिसने ऐसे भयंकर हाथीको वश किया। तेरी जिनमती माता धन्य है जिसके गर्भसे तेरे समान पुत्र उत्पन्न हुआ। उसी हाथीके मस्तकपर बिठाकर दुंदुभि बाजोंकी ध्वनिके साथ व सैकड़ों राजाओंके समूहको साथ लिये हुए कुमारको नगरमें प्रवेश कराया।

माता पिता बड़े आदरसे अपने घरमें लाए और उसका बड़ा ही सन्मान किया। सिंहासनपर बिठा कर माता पिताने मस्तक

झुका कर स्नेहसे चित्त भिगोकर पूछा—हे वत्स! गजराजको वश करते हुए तेरे शरीरमें सब कुशल है? कोई २ कुमारके शरीरको कोमल हाथसे स्पर्श कर कहने लगे—कहां तेरा केलेके पत्तेके समान कोमल शरीर, कहां मेरु पर्वतसम हाथी, किस तरह तूने वश किया? महान आश्चर्यवान होकर माता पिता अपने पुत्रके मुखको देखकर सुखको प्राप्त होते थे। जिस पुण्यके फलसे जम्बूस्वामी कुमार राज्य-सभामें मान्य हुए, बुद्धिवानोंको उचित है कि उस पुण्यका संग्रह करें।

छठा अध्याय।

जम्बूस्वामीकी जय पताका।

(२५७ श्लोकोंका भावार्थ)

दुःखकी संतानको हरनेवाले व धर्मतीर्थके कर्ता श्री श्रेयांस भगवानको तथा सर्व विघ्नोंकी शांतिके लिये श्री वासपूज्य तीर्थंकरको मैं नमस्कार करता हूं।

एक दिन राजा श्रेणिक सभाके बीच सिंहासनपर विराजित थे। अनेक राजा उनके चरणकमलोंकी सेवा करते थे, नतमस्तक थे। पानीके झरनेके समान चमर राजापर ढुर रहे थे। महामंत्री, सेनापति आदि राज्य कर्मचारी वर्ग सभामें यथास्थान शोभायमान थे। पासमें श्री जम्बूस्वामी कुमार भी प्रसन्नतासे तिष्ठे हुए थे, जिनके शरीरका तेज राजाओंके शरीरके तेजको मंद करता था।

विद्याधर द्वारा केरलदेश वर्णन।

इतनेमें अकस्मात् आकाशके मार्गसे दिशाओंमें प्रकाश फैलाता हुआ एक विद्याधर आया। यह घंटोंकी ध्वनिसे शोभित विमानपर आरूढ़ था। विमानको ठहराकर वह नीचे उतरा। राजा श्रेणिकके पास जाकर नमस्कार किया और विनय सहित यह कहने लगा कि हे राजन्! सहस्रशृंग नामका एक उत्तम पर्वत है जहां विद्याधर मनुष्य रहते हैं। उसी पर्वतपर मैं भी दीर्घकालसे सुखपूर्वक रहता हूं। मेरा नाम व्योमगति घोड़ा है। हे राजन्! मैं एक आश्चर्यकारी बातको कहनेको आया हूं सो आप श्रवण करें। मलयाचल पर्वतके दक्षिण भागमें केरल नामका नगर है। उस नगरका राजा मृगांक यशस्वी व गुणवान है। उसकी स्त्रीका नाम मालतीलता है। वह मेरी बहन है। वह शीलवान है, गुणवान है, सुवर्णके समान शरीरधारी है, उसकी कन्याका नाम विशालवती है। कर्म विधाताके द्वारा वह कामकी क्रीड़ाका स्थान ही निर्मापित है, विशालनेत्र कर्णपर्यंत चले गए हैं। शरीर कंचन समान है। एक दिन मृगांक राजा विद्याधरने एक मुनिराजसे प्रश्न किया कि हे दयासागर स्वामी! मेरा एक संशय है उसको निवारण कीजिये। मेरी पुत्रीका वर कौन होगा? इस वाक्यको सुनकर मुनिमहाराज अपनी दांतोंकी किरणोंसे दिशाओंको धोते हुए यथार्थ वचन कहने लगे कि राजगृह नामके रमणिक नगरमें राजा श्रेणिक है वही तेरी पुत्री विशालवतीका वर होगा।

(नोट—महावीर स्वामीके व गौतमबुद्धके समयमें दक्षिणकी

तरफ केरल देशमें ऐसे लोग रहते थे जिनको विद्याधर कहते हैं। वे लोग आकाशमें विमानोंपर चढ़के चलते थे। उस समय भी विमानपर चढ़कर चलनेकी कलाका प्रचार था, ऐसा इस चरित्रसे झलकता है।)

हे स्वामी! हंसद्वीपका निवासी विद्याधरोंका राजा बड़ा तेजस्वी रत्नचूल नामका विद्याधर है। उसने उस सुंदर कन्याको अपने लिये वरनेकी इच्छा प्रगट की। राजा मृगांकको मुनिराजके वचनोंपर श्रद्धा थी। उसने श्रेणिकको ही देनेका विचार स्थिर करके रत्नचूलकी बात अस्वीकार की। इस बातसे रत्नचूलने अपना बहुत अपमान समझा, क्रोधित हो गया, मृगांक राजासे वैर बांध लिया, सेनाको सजकर उसने मृगांकके नगरको नाश करना प्रारम्भ कर दिया है। उस पापीने मकान तोड़ डाले हैं। धन-धान्यसे पूर्ण व ग्रामोंकी पंक्तियोंसे शोभित ऐसे ऐश्वर्यवान देशको ऊजड़ कर दिया है। बनोंको उखाड़ डाला है, किला भी तोड़ दिया है। और अधिक क्या कहूं, सर्व ही नाश कर दिया है। मृगांक भयसे पीड़ित होकर अपने किलेके भीतर ठहर कर किसी तरह अपने प्राणोंकी रक्षा कर रहा है। वर्तमानमें जो वहांकी दशा है सो मैंने कह दी। आगे क्या होगा, उसे ज्ञानीके सिवाय और कौन जान सक्ता है? मृगांक राजा भी युद्धमें सावधान है। आज व कलमें वह भी अपनी शक्तिके अनुसार युद्ध करेगा।

क्षत्रियोंका यह धर्म है कि जब युद्धमें शत्रुका सामना किया

जाता है तब प्राणोंका त्याग करना तो अच्छा है परन्तु पीठ दिखा-कर जीना अच्छा नहीं। कहा है—

क्रमोऽयं क्षात्रधर्मस्य सन्मुखत्वं यदाहवे।
वरं प्राणात्ययस्तत्र नान्यथा जीवनं वरं ॥ ३० ॥

महान पुरुषोंका धन व प्राण नहीं है, किन्तु मानरूपी महान धन है। प्राण जानेपर भी यशको स्थिर रखना चाहिये। मान नहीं रहा तो यश कहांसे हो सक्ता है। कहा है—

महतां न धनं प्राणाः किंतु मानधनं महत्।
प्राणत्यागे यशस्तिष्ठेत् मानत्यागे कुतो यशः ॥ ३१ ॥

जो कोई शत्रुके पूर्ण बलको देखकर विना युद्ध किये शीघ्र भाग जाते हैं उनका मुख मैला होजाता है। जो कोई बुद्धिमान धैर्यको धारण करके युद्ध करते हैं, मर जाते हैं, परन्तु पीठ नहीं दिखाते हैं, वे ही यशस्वी धन्य हैं। कहा है—

ये तु धैर्यं विधायाशु युद्धं कुर्वंति धीधनाः।
मृतास्तत्रैव नो भग्ना धन्यास्ते हि यशस्विनः ॥ ३२ ॥

हे राजन्! मैं वचन देकर आया हूं, मुझे वहां शीघ्र जाना है। यह कार्य परम आवश्यक है, मुझे विलम्ब करना उचित नहीं है। मैं क्षण मात्र यहांपर आपका दर्शन करता हुआ इस उत्तम स्थानमें वहांका वर्णन करता हुआ ठहरा था। अब मेरा मन यहां अधिक ठहरना नहीं चाहता है। हे राजन्! आज्ञा दीजिये जिससे मैं शीघ्र जाऊं। ऐसा कहकर वह आकाशगामी विद्याधर तुरत चल-

नेको उद्यमी हुआ। इतनेमें जम्बूस्वामी उस विद्याधरसे कहने लगे—

हे विद्याधर! क्षणभर ठहरो ठहरो, जबतक श्रेणिक महाराज तैयारी करें। यह महाराज बड़े पराक्रमी हैं। सर्व शत्रुओंको जीत चुके हैं, उनके पास हाथी, घोड़े, रथ, बलदोंकी चार प्रकारकी सेना है, यह महा धीर हैं, राजा बड़ा बुद्धिमान है, राज्यके सातों अंगोंसे पूर्ण है, तेजस्वी है व यशस्वी है। कुमारके वीरतापूर्ण वचन सुनकर विद्याधरको आश्चर्य हुआ। फिर वह विद्याधर सर्व वचन युक्तिपूर्वक कहने लगा- हे बालक! तूने जो कुछ कहा है वही क्षत्रियोंका उचित धर्म है, परन्तु यह काम असंभव है। इसमें तुम्हारी युक्ति नहीं चल सक्ती। यहांसे वह स्थान सैकड़ों योजन दूर है, वहां जाना ही शक्य नहीं है तब वीर कार्य करनेकी बात ही क्या? तुम सब भूमिगोचरी हो, वे आकाशगामी योद्धा हैं, उनके साथ आपकी समानता कैसे हो सक्ती है? जैसे कोई बालक हाथीको पानीमें डालकर चन्द्रबिम्बकी परछाईंको चन्द्र जानकर पकड़ना चाहें वैसा ही आपका कथन है। अथवा कोई बौना मानव बाहु रहित हो और ऊंचे वृक्षके फलको खाना चाहे तो यह हास्यका भाजन होगा वैसा ही आपका उद्यम है। यदि कोई अज्ञानी पगोंसे सुमेरु पर्वतपर चढ़ना चाहे, कदाचित् यह बात होजावे परन्तु आपके द्वारा यह काम नहीं होसक्ता है। जैसे कोई जहाजके विना समुद्रको तरना चाहे वैसे ही यह आपका मनोरथ है कि हम रत्नचूलको जीत लेंगे।

इस तरह हजारों दृष्टांतोंसे उस विद्याधरने अपने प्रभावका

बल दिखलाया। सर्व और चुप रहे, परन्तु यशस्वी कुमारसे न रहा गया। वह वादी-प्रतिवादीके समान अनेक दृष्टान्तोंसे उत्तर देने लगा। हे विद्याधर! ऐसे विना जाने वचन कहना ठीक नहीं है। ज्ञान विना किसीके बल व अबलको कौन जान सक्ता है? कुमारके वचनको सुनकर व्योमगति विद्याधर निरुत्तर होगया। मौनसे कुमारके पराक्रमको देखनेके लिये ठहर गया। श्रेणिकराजा उनके वचनोंको सुनकर अहंकार युक्त होकर यह विचारने लगा कि यह काम बहुत कठिन है, ऐसा सोचकर मनमें घबड़ा गया। राजा बार बार विचार करता है, खेदित होता है, उस कामको दुर्लभ जानकर कुछ करनेका दृढ़ संकल्प न कर सका। न तो शीघ्र चलनेको तय्यार हुआ न उसको कुछ उत्तर ही दे सका। दो काठकी तराजूमें चढ़कर राजाका मन हिलने लगा।

जम्बूकुमारका साहस।

इतने हीमें जंबूस्वामी कुमारने आनंद सहित गंभीर वाणीसे शांतभावके द्वारा ऊंचे स्वरसे कहा—हे स्वामी! यह काम कितना है? आपके प्रसादसे सिद्ध हो जायगा। सूर्यकी तो बात ही दूर रहे, उसकी किरण मात्रसे अंधकार मिट जाता है। मेरे समान बालक भी उस कामको कर सक्ता है तो आपकी तो बात ही क्या है, जिनके पास चार प्रकारकी सेना तय्यार है।

जंबूकुमारके वचन सुनकर श्रेणिक महाराज आनंदित होगए। जैसे सम्यग्दृष्टी तत्वकी बात कर आनंदित होजाता है और जम्बू-

कुमारके वचनोंपर श्रद्धावान होगए। तब हर्षपूर्वक मगधका राजा कहने लगा कि यदि ऐसा है तो क्षत्रिय धर्मकी मर्यादा सदा बनी रहेगी। जिस कामसे कन्याका लाभ हो व क्षत्रियोंका यश हो, उस कामके साधनेसे ही हम अपना जन्म सफल मानते हैं।

हे धीर वत्स! तू परम्परा फलका ज्ञाता है ऐसा विचार कर तुझे शीघ्र वहां जाना चाहिये। इस शुभ कार्यमें विलंब न करना चाहिये।

जम्बूकुमारका युद्धार्थ गमन।

आनंद सहित राजासे इस तरह आज्ञा पाकर कुमार भयरहित हो अकेले वहां जानेको तैयार होगए। कुमारका साहस व बल अपूर्व था। तब इस वीर कार्यके करनेका उद्यमी होकर जम्बूकुमारने व्योमगति विद्याधरसे कहा—हे विद्याधर! अपने विमानमें मुझे बिठाले, और शीघ्र ही वहां ले चल जहां रत्नचूल है।

कुमारके आश्चर्यकारी वचन सुनके विद्याधर कहने लगा—हे बालक! आप वहां चलके क्या करेंगे! मृगका बच्चा अपने ही घरमें चपलता रखता है, जबतक क्रोधित सिंह गर्जना करता हुआ सामने न आवे। तब ही तक शरीर सुंदर भासता है जब तक भयानक दांतवाला यमराज नहीं खाजावे। तब ही तक तृणादि जंगलमें हरे भरे दीखते हैं जब तक प्रचंड अग्निकी ज्वाला बनमें न फैले। आकाशमें मेघोंका समूह तब ही तक शोभता है जब तक दुर्धर तीव्र पवन उन मेघोंको उड़ा न दे। तब ही तक आयु, आरोग्यता, यश, संपत्ति, जय आदि

रहते हैं, जब तक तीव्र पापका उदय न आवे। उसी समय तक जैन धर्मके समान निर्मल ब्रह्मचर्यव्रत होता है जब तक स्त्रियोंके कटाक्षोंसे मन जर्जरित न हो। तब ही तक साधुके मूलगुण गुणकारी होते हैं, जब तक क्रोधकी अग्नि उनको क्षणमें भस्म न कर दे। सुमेरुपर्वतके समान गौरव प्राणीका उसी समय तक रहता है जब तक वह दीन भावसे 'देहि' अर्थात् देओ ऐसे दो अक्षर मुंहसे नहीं निकालता है। तब ही तक हे बालक! तेरा बालप्रताप है जब तक रत्नचूलके बाणोंसे तू जर्जरित न किया जावे। कहा है—

तावद्ब्रह्मव्रतं साक्षान्निर्मलं जैनधर्मवत्।
यावद्योषित्कटाक्षाणां नापातैर्जर्जरं मनः॥ ७१॥

तावन्मूलगुणाः सर्वे संति श्रेयोविधायिनः।
यावदुध्वंसी न रोषाग्निर्भस्मसात्कुरुते क्षणात्॥ ७२॥

गौरवं तावदेवास्तु प्राणिनः कनकाद्रिवत्।
यावन्न भाषते दैन्याद्देहीति द्वौ दुरक्षरौ॥ ७३॥

ऐसे क्रोधको पैदा करनेवाले वचन सुनकर जंबूकुमार कहने लगे—उनके भीतर क्रोध अग्नि थी, बाहर नहीं थी, वह आगे भस्म करेगी। हे आकाशगामी विद्याधर! तेरा कहना ठीक नहीं। यह बालक क्या करेगा सो तू अभी ही देख लेगा।

जगतमें तीन प्रकारके प्राणी हैं। उत्तम वे हैं जो कहते नहीं किंतु करके बताते हैं। मध्यम वे हैं जो कहते हैं व करते भी हैं। जघन्य वे हैं जो केवल कहते हैं परन्तु करते नहीं हैं। कहा है—

कुर्वंति न वदंत्येव कुर्वंति च वदंति च।
क्रमादुत्तममध्यास्तेऽधमोऽकुर्वन् वदन्नपि ॥ ७७ ॥

तब मगधेश श्रेणिक कुमारके योग्य वचन सुनकर तथा कुमारके पुरुषार्थको समझकर विद्याधरसे कहने लगा—

हे विद्याधर ! जो तूने मेरे सामने ऐसा कहा कि यह बालक अकेला जाकर वहां क्या करेगा, यह तुम्हारा सर्वपक्ष दोषपूर्ण है। जिस सिंहको मृग नहीं मार सक्ते उस सिंहको अकेला अष्टापद मारडालता है। जिस यमने सर्व जगतको मारा है, उस यमको जिनेन्द्रने जीत लिया है। प्रचंड दावाग्निको भी मेघका जल अकेला बुझा देता है। जो वायु मेघको उड़ा देती है वह ऊंचे सुमेरुपर्वतको नहीं उडा सक्ती है। रात्रिमें अंधकारके समान मिथ्याज्ञान तब तक ही रहता है जब तक रात्रिके अंधकारको दूर करनेवाले सूर्यके समान आत्मीक ज्ञानका प्रकाश उदय नहीं हो। जो क्रोधकी अग्नि सर्व कर्माधीन प्राणियोंको जला देती है, उसीको कोई २ महात्मा उत्तम-क्षमारूपी जलसे शांत कर देता है। तीर्थंकर भगवान सर्व प्राणियोंके हित करनेवाली मुनिदीक्षाको लेकर भिक्षासे भोजन करते हैं तौ भी उनकी इन्द्रादि पूजा करते हैं। सूर्य एक अकेला ही आकाशमें उदय होता है। क्या वह सर्व जगतके अंधकारको दूर नहीं कर देता है ? बड़े पुरुषोंने यह वचन कहा है कि कार्यको सिद्ध करनेवाला एक पुरुष भी होता है।

श्रेणिकराजाने जो वचन कहे उनको विद्याधरने बड़े

आदरसे अपने मस्तक पर चढ़ाएं। विद्याधरने उस दिव्य विमानमें श्रेणिक महाराजकी आज्ञा पाकर अनुपम बलधारी श्री जम्बूकुमारको बिठाया। वह विमान आकाशके मार्गसे चलके पवनके वेगके समान शीघ्र ही इच्छित स्थानपर पहुंच गया। पीछे श्रेणिक-राजा भी चार प्रकारकी सेनाको लेकर वीर योद्धाओंके साथ चल पड़ा। रणके बाजे बजने लगे, उनको सुनकर मेघकी ध्वनिकी शंका औरोंको होगई। घोड़ोंसे खींचे हुए रथ चलने लगे, हाथी भी महान शब्द करने लगे।

श्रेणिकराजाका सेना सहित प्रस्थान।

छ: अङ्गी शक्तिको रखनेवाला श्रेणिकराजा रत्नचूलके जीतनेकी इच्छासे चला। उसकी सेनामें हाथी झड़नोंके पतनको रखनेवाले पर्वतोंके समान मदको भूमिपर सींचते हुए ऐसे चलते मालूम होते थे, मानो पर्वतमालाएं ही चल रही हैं। उन हाथियोंके ऊपर सुभट अंकुश लिये विराजमान थे। घोड़ोंके ऊपर चमकती हुई तलवारोंको लिये हुए योद्धा बैठे थे, वे घोड़े सुंदर ध्वनि कर रहे थे।

शस्त्रोंसे सजे हुए रथ मार्गमें चलते हुए ऐसे दीखते थे, मानों संग्रामरूपी समुद्रको तैरनेवाली नौकाएं हैं। पैदल चलनेवाले योद्धा कवच और रक्षाका टोप पहने हुए खडगादि हाथमें लिये चल रहे थे। शस्त्रोंको लिये हुए भटोंका समूह ऐसा शोभता था मानों बिजली सहित मेघ ही चल रहे हैं। चारों प्रकारकी सेनाको लेकर श्रेणिक निकला। प्रथम पैदल सेना थी, फिर घोड़ोंकी सेना

थी, फिर रथोंकी, फिर हाथियोंकी। बीचमें ही श्रेणिक महाराजका रथ पताका सहित था। नगरकी सड़कोंको लांघकर सेना धीरे २ चलती थी। तरङ्ग सहित समुद्र ही मालूम होता था। नगरकी स्त्रियोंने अपने झरोखोंसे दृष्टिके साथ साथ पुष्पोंकी भी वर्षा की। नगरके बाहर दूर जाते हुए नगरवासियोंको राजा श्रेणिककी सेना बहुत बड़ी विदित होती थी। ऐसा झलकता था, मानों प्रलयकालकी पवनसे समुद्र क्षोभित होगया है, अथवा तीन जगतके प्राणी आकुलित हो जा रहे हैं।

श्रेणिक महाराजने देखा कि कहीं लताओंके मंडपोंमें चंद्रकांति मणिकी शिलाओंपर राजाका यशगान करते हुए किन्नरदेव बैठे हैं। कहीं लताओंमें फूलोंको व भौंरोंको उनपर संलग्न देखकर राजाको कृष्णकेशवाली अपनी स्त्रियोंकी स्मृति आ जाती थी। राजा श्रेणिकने मार्गमें छायादार फलोंसे लदे हुए ऊंचे ऊंचे वृक्षोंको देखा। सरोवरोंके तटोंपर भूमिपर कमलोंकी रज पड़ी हुई थी सो सुवर्णकी रजके समान झलकती थी। चलती हुई सेनाकी रज आकाशमें छा जाती थी सो रात्रि होनेकी शंका होजाती थी। कहींपर दूधको झड़-काती हुई गाएं जंगलमें जाती हुई दिखती थीं। कहींपर ऊंचे २ सींगवाले बैल स्थल-कमलोंको अंकित करते हुए जाते थे। कहीं निर्मल यशके समान सफेद कमलकी डंडियें दिखती थीं, कहीं पर दूध पीकर संतोषी बछड़े स्वच्छ-शरीर दिखलाई पड़ते थे।

राजाने देखा कि नगरके कोटके बाहर पके धान्यसे लदे हुए खेत

खड़े हुये थे व फलसे भरे हुए खेत झुके हुए थे, उद्धत नहीं थे। मानो वे मानवोंको कह रहे हैं कि वे इनका भोग कर सके हैं। राज्यवर्गसे वेष्ठित राजा देखकर प्रसन्न हुआ। कहीं पर राजाने सुंदर स्त्रियोंको इक्षुदंड या गदा हाथमें लिये हुए देखा। कहीं पर खेतवालोंकी वधु-ओंको मनोहर गीत गाते हुए देखा। उनके गीतकी ध्वनिसे हंस आकाशमें छा रहे थे। चावलोंके खेतोंकी रक्षा करनेवाली बालिकाएँ बैठी थीं, जिनके मुखकी सुगंध लेनेके लिये भ्रमर उड़ रहे थे। दोपहरके समय रागद्वेष न करके मध्यस्थ रहनेवाला सूर्य भी तीव्र धूपसे तप रहा था। यह ठीक है, तीव्र प्रताप धारनेवालोंका माध्यस्थ भाव भी तापकारी होता है।

बड़े २ घोड़े खुरोंको उछालते हुए व मुंहसे वमन करते हुए चले जाते थे। वनके पशु पक्षी सेनाकी महान ध्वनिको जिसे कभी सुना नहीं था, सुनकर भयवान होगए। हाथी उस वनसे दूसरे वनको चले गए। केशरीसिंह जाग करके मुह फाड करके निर्भय हो देखने लगा, भैंसे व गाएं व मृग, व शूकर वनके भागको छोड़कर चले गए। बहुत दूर चलकर सेनाने रेवा नदीके किनारे डेरा किये। फिर वहांसे केरल नगरकी तरफ जाते हुए कुछ दिनोंमें सेना कुरल पर्वतपर पहुंच गई। कहा है—

ततस्तां च समुत्तीर्य प्रतस्थे केरलां प्रति।
विशश्राम कियत्कालं नाम्ना कुरलभूधरे ॥ २४३ ॥

यहां पर्वतपर सेनाने कुछ काल विश्राम किया। पर्वतपर भी

जिनेन्द्रके बिम्बोंकी राजा श्रेणिकने पूजा की व मुनियोंकी भी भक्ति की। फिर राजा वहांसे भी आगे चला। व कुछ दूर जाकर सेना सहित ठहर गया।

(नोट—केरलनगर मलाबार मदरास देशमें है। जिनके पास ही कुरल पर्वत होना चाहिये। * वहां २॥ हजार वर्ष पूर्व श्री जिनमन्दिर थे। वर्तमानमें वह पहाड़ कहां पर है इसका पता लगाना चाहिये।)

राजा श्रेणिकने तो वहां विश्राम किया, उधर श्री जम्बूकुमार विद्याधरके साथ शीघ्र ही केरला नगरीमें पहुंच गए। नगरीमें सेनाका शब्द होरहा था, सुनकर जम्बूकुमारने विद्याधरसे पूछा, यह कोलाहल क्या है? तब विद्याधरने कहा कि आपके शत्रु रत्नचूलकी सेना यहां पड़ी हुई है, इसीका शब्द है। मैंने पहले कहा था कि कन्याको इसने मांगा था, न मिलनेसे मानभंगसे क्रोधी होकर यह यहां आया है, देशको उजाड़ा है। राजा मृगांक भयभीत हो किलेके भीतर बैठा है। स्वामी! इसके सेवक बहुतसे विद्याधर हैं। यह बहुतसे शत्रुओंको जीतनेवाला विद्याधरोंका स्वामी है। इसका जीतना दुर्निवार है। विद्याधरके इन वचनोंको सुनकर कुमारका क्रोध अधिक बढ़ गया। कुमारने कहा—हे विद्याधर! तू विमानको यहां ठहरा, उसकी रक्षा कर, मैं जाकर देखता हूं, रत्नचूलका कैसा उद्धत बल है!

जंबूकुमार विमानसे उतरे और सीधे शत्रुकी सेनामें निर्भय होकर चले गए व कौतुकसे सेनाको इधर उधरसे देखने लगे। सेनाके योद्धा

कामदेवके समान सुन्दर कुमारको बार बार देख कर चकित हो आपसमें बातें करने लगे—यह कौन है, कोई इन्द्र है, धरणेन्द्र है या कामदेव है जो हमारी सेनाको देखनेके लिये आया है। कोई कहने लगा कि यह कोई महा भाग्यवान् लक्ष्मीवान सेठ है, जो रत्नचूलकी सेवाको आया है, कोई कहने लगा कि यह कोई विद्याधर है जो सहायताके लिये आया है। कोई कहने लगा कि यह कोई राजा है, जो कर देनेको व अपना स्नेह बतानेको आया है, कोई कहने लगा यह कोई छली धूर्त वेषधारी सुन्दर नर है। सेनाके सैनिक आपसमें बातें करते ही रहे। किसीका साहस पूछनेका न हुआ। कुमार सीधे राजद्वार पर पहुंच गए।

जम्बूकुमारका रत्नचूलसे मिलना।

द्वारपालसे कहा कि भीतर जाकर विद्याधरसे मेरा संदेश कह दे कि मैं दूत हूं, मृगांकराजने मुझे भेजा है। आपसे कुछ समताकारी बात करना चाहता हूं। द्वारपालने शीघ्र ही भीतर जाकर व राजाको नमन कर यह कहा कि कोई मानव द्वारपर है जो आपका दर्शन करना व बात करना चाहता है। रत्नचूलने उसे बुलानेकी आज्ञा दे दी। आज्ञा पाकर द्वारपाल जंबूकुमारके पास आया और भीतर जानेको कहा। जंबूकुमार अपनी कांतिसे तेजको फैलाते हुए भीतर निर्भय हो चले गए। नमस्कार किये विना सामने खड़े हो गए। रत्नचूल उसे देखकर आश्चर्य करने लगा कि यह कैसा दूत है, जो नमस्कारकी क्रिया भी नहीं जानता है, कुछ न कहकर

खंभेके समान सामने खड़ा है। मालूम होता है कि यह कोई देव है या कोई महापुरुष है जो मेरे बलकी परीक्षा करनेको आया है। ऐसा मनमें चिंतवन करके रत्नचूलने कुमारसे पूछा—आप किस देशसे मेरे पास किस कामके लिये आए हैं? सुनकर कुमार कहने लगे कि नीतिमार्गका आश्रय करके तुम्हें समझानेके लिये यहां शीघ्रतासे आया हूं। तुम अपना खोटा हठ छोड़ दो। इस दुराग्रहसे इसलोक व परलोक दोनोंमें तुम्हें दुःख प्राप्त होगा। हे विद्याधर! इससे तेरा अपयश होगा, व तू दुर्गतिका कारण पापबंध करेगा, जगतमें जगह २ हजारों स्त्रियां हैं, तुझे इसी कन्यासे क्या साध्य है, यह हम नहीं समझ सके। यदि तू अपनी सेनाके बलका अभिमान रखता है तो यह तेरा अज्ञान है।

जम्बूकुमारका उपदेश।

इस संसाररूपी वनमें कर्मसहित अनंतजीव अपने २ कर्मोंके अनुसार भ्रमण किया करते हैं। कर्म नानाप्रकारके होते हैं, उनका फल भी नानाप्रकारका होता है। इन कर्मोंके स्वरूपको न जानते हुए जीव मिथ्यादृष्टि अज्ञानी होरहे हैं। कर्मोंके फलके सम्बन्धमें श्री समंतभद्र कृत स्वयंभूस्तोत्रमें कहा है—

अलंघ्यशक्तिर्भवितव्यतेयं हेतुद्वयाविष्कृतकार्यलिंगा।
अनीश्वरो जन्तुरहं क्रियार्त्तः संहत्य कार्येष्विति साध्ववादीः ॥३३॥
बिभेति मृत्योर्न ततोऽस्ति मोक्षो नित्यं शिवं वांछति नास्य लाभः।
तथापि बालो भयकामवश्यो वृथा स्वयं तप्यत इत्यवादीः ॥ ३४ ॥

भावार्थ—जो भवितव्य है उसकी शक्तिको कोई कांच नहीं सक्ता है। कार्य दो कारणोंसे होता है—पुरुषार्थसे और पूर्व पुण्यके उदयसे। हे सुपार्श्वनाथस्वामी! आपने ठीक २ बताया है कि कोई इस बातका अहंकार करें कि मैं कार्य कर ही ले जाऊंगा तो वह पुण्यकी सहायताके विना नहीं कर सक्ता है। हरएक प्राणी मरना नहीं चाहता है, डरता रहता है, परन्तु मरणसे कोई बचता नहीं। हरएक नित्य भला चाहता है परन्तु सबका भला नहीं होता। जब पुण्यके उदयसे काम होता है व पापके उदयसे विनाश होता है, तब अज्ञानी वृथा ही मरणसे डरता है, इच्छाओंके द्वारा जलता है, ऐसा आपका यथार्थ कथन है।

कोई माने कि मैं योद्धा हूं, उससे बलवान योद्धा मिलेगा। फिर कोई उससे भी बलवान मिलेगा। संसारमें ऐसी ही स्थिति है। कोईका अहंकार रहता नहीं। कोई अपनेको विजयी माने और यह समझे कि मुझे कोई विघ्न नहीं आवेगा, यह बात भी नहीं है। इस संसारमें जीवोंको भक्षण करनेवाला यमराज सदा तैयार रहता है। हे रत्नचूल विद्याधरोंका स्वामी! तू उत्तम विचारमें लीन हो। बलवान भी मानव यदि कुमार्गमें चलकर प्रमादी होजाते हैं तो वे क्षण मात्रमें नाश होजाते हैं। रावण आदिने अभिमान किया था वह बात प्रसिद्ध है। वह अपयशका भागी हुआ व दुर्गतिको भी गया! जब मृगांकने अपनी इस कन्याको श्रेणिक राजाके लिये देना निश्चय कर लिया है तो वह तुझे कैसे दी जासक्ती है? वह

बात अपयशकी होगी। यदि युद्ध हो तो क्षत्रियका धर्म नहीं है कि अपने जीवनकी रक्षाके लिये युद्धसे भाग जावे। कौन ऐसा बुद्धिमान है जो अपयशरूपी विषका पान करेगा।

हे विद्याधर! तू प्रसन्न हो, प्रमादका विधान न आचरण कर, तुझे कोई निंदा योग्य वचन भी नहीं कहना चाहिये।

इसतरह जम्बूकुमारने सुंदर वचनरूपी पुष्पोंसे गुंथी हुई अति शीतल माला रत्नचूलको पहनाई, परन्तु विरही स्त्रीको पुष्पमाला उष्ण भासती है, वैसे ही विद्याधरको वह तापकारी होगई।

रत्नचूलका जवाब।

तब रत्नचूलकी आंखें क्रोधसे लाल होगई, ओठ कांपने लगे। क्रोधसे जलती हुई वाणी निकाली-हे बालक! तू मेरे घरमें दूत बनकर आया है। बालक है, इसलिये मारने योग्य नहीं है, परन्तु तुझ दुष्टकी दूसरी अवस्था नहीं होसक्ती है। तुझको लज्जा नहीं आती है, जो तू अपने स्वामीके कार्यको विनाश करनेवाले व वैर बढानेवाले विरुद्ध वचन कहता है? तू इस बातको नहीं जानता है कि क्या कहना चाहिये क्या न कहना चाहिये, न बल अबलका तू विचार करता है, बावलेके समान ढीठतासे जो मनमें आया सो बकता है।

उल्लूककी शक्ति नहीं है जो सूर्यका सामना कर सके। हे दूत! मेरे सामने तुझे ऐसे वाचाल वचन कहना योग्य नहीं है। जैसे जीर्ण बीज सुमेरु पर्वतको क्या भेद सक्ता है? इसी तरह दुष्ट मृगांक का

श्रेणिक कोई भी युद्धमें मेरा सामना नहीं कर सक्के। हे दूत! हम विद्याधर हैं, श्रेणिक भूमिगोचरी है। हम दोनोंकी सामर्थ्य क्या कभी बराबर हो सक्ती है? अधिक कहनेसे क्या, तू मौन रख, मेरे साथ जिसको युद्ध करना हो वह शीघ्र ही आजावे. ऐसा कहकर रत्नचूल निश्चल मन धरके गंभीर व अक्षोभित समुद्रके समान आकुलता-रहित हो गया।

जम्बूकुमारका जवाब।

वज्रवृषभनाराच संहननका धारी प्रचंड पराक्रमी निर्भय जंबू-कुमार मेघकी ध्वनिके समान गंभीर वाणी कहने लगा—हे रत्नचूल विद्याधर! यह सब तुने घमंडमें होकर कहा है। यह तेरा कथन तेरे अभिमानको चूर्ण करनेवाला है व हेतुसे बाधित है। रावण विद्याधर था, उसे भूमिगोचरी रामचंद्रने सेनासहित युद्ध करके अपने बलसे ही मार डाला। काक भी आकाशमें उड़ता है। जब वह बाणोंसे छिद जाता है, तब वह भूमिपर आकर गिर पड़ता है। ऐसे वचन सुन कर रत्नचूल क्रोधसे भर गया और तलवार लिये हुए योद्धाओंको आज्ञा दी कि जम्बूकुमारको मारो। तब वे आठ हजार योद्धा जो कुमारके बलको नहीं जानते थे, कुंतादि शस्त्रोंसे बलवान जम्बूकुमारको मारनेका उद्योग करने लगे। इतनेहीमें कुमारने अपनी दोनों भुजाओंसे व लातोंकी मारसे कितनेहीको यमपुरमें पहुंचा दिये।

अब युद्धका प्रारम्भ होगया। एक तरफ जंबूकुमार अकेले थे, दूसरी तरफ अनेक योद्धा थे। कुमारने अपनी भुजाओंके बलसे

कितने ही योद्धाओंको मारा। तब व्योमगति विद्याधरने अपनी तीक्ष्ण खड्ग कुमारको अर्पण की। यह भी कहा कि तुम विमानपर चढ़ जाओ। कुमारने इस बातपर ध्यान नहीं दिया। वह योद्धाओंके साथ लड़नेमें अपने शरीरको तृणके समान समझता था। कहा है—

ब्रह्मचारी तृणं नारी शूरस्य मरणं तृणम्।
दातुश्चापि तृणं लक्ष्मी निस्पृहस्य तृणं जगत् ॥ २१० ॥

भावार्थ—ब्रह्मचारीके लिये स्त्री तृणके समान है। योद्धाके लिये मरण तृणके समान है। दातारके लिये लक्ष्मी तृणके समान है। इच्छारहितको यह जगत् तृणके समान है।

जम्बूकुमारका युद्ध।

कुमारने खड्गसे चारों तरफसे योद्धाओंको मार मारके गिरा दिये। योद्धाओंके शस्त्र कुमारपर वृथा ही पड़ते थे। उन सबको चतुराईसे कुमार बचाता था। वज्रमई शरीरधारीका देह उन शस्त्रोंसे जरा भी नहीं भेदा गया। ऐसी सावधानीसे व चतुराईसे कुमारने युद्ध किया कि रत्नचूलके योद्धा उसके सामने ठहर नहीं सके। जैसे एक ही सूर्य सर्व अन्धकारको नाश कर देता है, वैसे अकेले प्रतापशाली कुमारने शत्रुदलको भगा दिया। इतनेहीमें किसी गुप्तचरने जाकर मृगांक राजासे कहा कि हे देव! आपके पुण्यके उदयसे कोई महापुरुष आया है जो शत्रुकी सेनाके जलानेको दावानलके समान है। वह बड़ी चतुराईसे युद्ध कर रहा है। वह आपका कोई बन्धु है या पूर्वजन्मका मित्र है, या श्रेणिक राजाने

किसी वीर योद्धाको भेजा है। इन बचनोंको सुनकर मृगांक राजाके शरीरमें आनंदसे रोएं खड़े होगए। तब वह मृगांक भी अपनी सब सेनाको सजकर युद्धके लिये नगरसे बाहर निकला। उसकी सेनाकी बाजोंकी ध्वनि सुनकर रत्नचूल भी सावधान होगया। क्रोधाग्निसे जलता हुआ युद्ध करनेको सामने आया। इसतरह दोनों तरफकी सेनाओंमें भयंकर युद्ध चल पड़ा। हाथी हाथियोंसे, घोड़े घोड़ोंसे, रथ रथोंसे, विद्याधर विद्याधरोंसे परस्पर भिड़ गए।

इस भयंकर युद्धका वर्णन हम क्या करें? रूधिरकी धारासे समुद्र ही होरहा है। जिनकी छाती भिद गई है वे उसको पार करके शत्रुके ऊपर जा नहीं सकते थे। घोड़ोंके खुरोंका धूला आकाशमें छाया हुआ है। जिससे दिनमें भी रात्रिका अनुमान होता है। कहीं योद्धा एक दूसरेका नाम लेकर ललकार रहे हैं। रथोंके चलनेकी, हाथि-योंकी घंटियोंकी व उनके दहाड़नेकी, धनुषोंकी टंकारकी, योद्धा-ओंके रे रे शब्दकी महान ध्वनि हो रही है। कहीं योद्धा, कहीं गज, कहीं रथ भग्न पड़े हैं। तलवार, कुन्त, मुद्गर, कोहदंड आदि शस्त्रोंसे सैकड़ोंके सिर चूर्ण हो गए हैं। कितनोंहीकी कमर टूट गई है, आकाशमें तलवार पवनादिके कारण बिजलीसी चमक रही है।

ऐसा महान युद्ध होरहा है कि वहां अपना पराया नहीं दिखता है। कहीं भूमिमें आंतें पड़ी हैं, कोई बाणोंको फेंकाए मूर्छित पड़े हैं, कोई किसीके केशोंको पकड़कर मार रहा है। सिरसे रहित धड़ भी जहां युद्धके लिये नाचते थे। कुमार व रत्नचूल दोनों आकाशमें

विमानों पर युद्ध करने लगे। जम्बूस्वामीने रत्नचूलका विमान तोड़ दिया तब वह भूमिपर आगया। जैसे ही यह भूमिपर गिर पड़ा, तब हाथीपर चढ़े मृगांकने महावतको पूछा कि किसको किसने मारा? तब उसने कहा कि पराक्रमी जम्बूकुमारने रत्नचूलको भूमिपर गिरा दिया। इतनेमें कुमारने रत्नचूलको दृढ़ बांध लिया। राजाके बांधे जानेपर रत्नचूलकी सब सेना भाग गई। तब राजा मृगांकने व उसकी ओरके विद्याधरोंने जम्बूकुमारकी प्रशंसा की। चारों तरफ जय जयकार शब्द हो गया। कहने लगे—

धन्योऽसि त्वं महाप्राज्ञ रूपनिर्जितमन्मथ।
क्षात्रधर्मस्य चौश्वर्यमद्य जातं त्वया कृतम्॥ २५२॥

भावार्थ-हे महाबुद्धिवान्, कामदेवके रूपको जीतनेवाले कुमार तू धन्य है! तुमने आज क्षत्रिय धर्मके ऐश्वर्यको भले प्रकार प्रगट कर दिया। केरल राजाकी सेनामें जीतके नगारे बजने लगे। बंदीजन कुमारके यश कहने लगे। व्योमगति विद्याधरने जंबूकुमारका मृगांकके साथ बहुत प्रेम करा दिया।

घुटनोंतक लम्बी भुजाधारी जंबूकुमारने आठ हजार विद्याधरोंको लीला मात्रमें जीत लिया। यह सब पुण्यका महात्म्य है। उस पुण्यके उदयसे ही कुमारने जयलक्ष्मी प्राप्त की। इसलिये जिनको सुखकी इच्छा है उनको एक धर्मका सेवन सदा करना योग्य है। कहा है:-

एक एव सदा सेव्यो धर्मो सौख्यमभीप्सुभिः।
यद्विपाकात्कुमारेण जयश्रीः किंकरीकृता॥ २५७॥

सातमा अध्याय।

जंबूस्वामी व श्रेणिक महाराजका राजगृहमें प्रवेश।

(श्लोक १४५ का भावार्थ)

मैं शुद्ध भावोंको रखनेवाले निर्मल ज्ञानधारी विमलनाथकी स्तुति करता हूं तथा अपने गुणोंकी प्राप्तिके लिये अनंत वीर्यवान अनंतनाथ भगवानको वंदना करता हूं।

जम्बूकुमारकी वैराग्यपूर्ण आलोचना।

जम्बूकुमारने जब भयानक युद्धक्षेत्रको देखा तब मनमें दयाभाव पैदा होगया—विचारने लगे, संसारकी अवस्था अनित्य है। अहो! जलका स्वभाव शीतल है परन्तु अग्निके संयोगसे उष्ण होजाता है, परन्तु स्वरूपसे तो जल शीतल ही है। शीतलता जलका गुण है, वैसे ही आत्माका स्वभाव शांत है, कषायके उदयसे मोहित हो जाता है। ज्ञानवान पुरुषोंने इस संसारकी स्थितिको उच्छिष्ट (झूठन) मानके इसका मोह त्याग किया है, परन्तु जो अज्ञानसे व मानसे अंध हैं वे मरके दुर्गतिको जाते हैं। जो प्राणी इन्द्रियोंके विषयोंमें आसक्त होते हैं वे इसीतरह मरते हैं जैसे पतंगा स्वयं आकर अग्निमें पड़कर मर जाता है। एक तो विषयोंका मिलना दुर्लभ है, कदाचित् इच्छित विषय प्राप्त भी होजावें तो उन विषयोंके भोगसे तृष्णाकी आग बढ़ती ही जाती है। ये विषय किंपाक

फलके समान हैं—सेवते अच्छे लगते हैं, परन्तु इनका फल कडुवा है। ऐसा होनेपर भी यह बड़े आश्चर्यकी बात है कि बड़े बड़े ज्ञानी भी इन विषयोंका सेवन करते हैं।

वास्तवमें यह मोहरूपी पिशाच बड़ा भयंकर है, महान पुरुषोंको भी इससे पीछा छुड़ाना कठिन है। इस मोहके उदयसे यह प्राणी परको अपना माना करता है। जैसे मृग जंगलमें मरीचिका (चमकती हुई घास या बालू) को जल समझकर पानी पीनेके लिये दौडते हैं, जल न पाकर अधिक तृषातुर हो जाते हैं, वैसे मोही प्राणी अज्ञानसे विषयोंसे सुख होगा ऐसा जानकर विषयोंको भोगनेके लिये दौड़ते हैं, परन्तु अधिक तापको बढ़ा लेते हैं। जो मिथ्यात्व अंधकारसे अंध हैं, वे ही इन्द्रियोंके विषयोंसे सुख मानते हैं। जैसे कोई अग्निको ठंडा करनेके लिये शीघ्र ईंधन डाल दे वैसे ही अज्ञानी तृष्णाकी दाहको शमनके लिये विषयोंके सामने जाता है, उल्टा अधिक तृष्णाको बढ़ा लेता है। उस चतुराईको धिक्कार हो जो दूसरोंको तो उपदेश करे व अपने आत्माके हितका नाश करे। उस आंखसे क्या लाभ, जिसके होते हुए भी गड्ढेमें गि- पड़े। उस ज्ञानसे भी क्या जो ज्ञानी होकर विषयोंके भीतर पड़ जा-

अहो! मैं भी तो ज्ञानी हूं, मुझ ज्ञानीने भी —— होकर यश पानेकी इच्छासे घोर हिंसाकर्म क- है कि अपने प्राण जानेपर भी किसी प्राणीकी हिं- मुझ निर्दयीने तो आठ हजार योद्धाओंको मा-

ही कोई शुभ या अशुभ कर्मोंका उदय आगया। कर्मके तीव्र उदयको तीर्थंकर भी निवारण नहीं कर सके। जैसे स्फटिकमणि स्वभावसे स्वच्छ है तो भी रक्त पीत आदि उपाधिके बलसे रक्त पीत आदि रंगके भावको प्राप्त होजाती है वैसे ही यह जीव स्वभावसे चैतन्यमई है व अतीन्द्रिय सुखका धारी है। संसारमें रहता हुआ कर्मोंके उदयसे अहंकार आदि नाना भावोंमें परिणमन कर जाता है। कहा है—

जानतापि मयाकारि हिंसाकर्म महत्तरम्।
तत्केवलं प्रमादाद्वा यद्वेच्छता यशश्चयम् ॥ १८ ॥
प्राणान्तेऽपि न हंतव्यः प्राणी कश्चिदिति श्रुतिः।
मया चाष्टसहस्रास्ते हता निर्दयचेतसा ॥ १९ ॥
आफलोदयमेवैतत्कृतं कर्म शुभाशुभम्।
शक्यते नान्यथा कर्तुमातीर्थाधिपतीनपि ॥ २० ॥
यत्स्फाटिको मणिः स्वच्छः स्वभावादिति भावतः।
सोऽप्युपाधिबलादेव रक्तपीतादिकां व्रजेत् ॥ २१ ॥
तथायं चित्स्वभावोऽपि जीवोऽतीन्द्रियसौख्यवान्।
धत्ते मानादिनानात्वमुदयादिह कर्मणाम् ॥ २२ ॥

(नोट–सम्यग्दृष्टी गृहस्थका ऐसा ही भाव रहता है। वह [illegible] सकनेके कारण गृहस्थ सम्बन्धी सब काम युद्धादि [illegible]नी निन्दा गर्हा किया करता है। कर्मकी तीव्र [illegible] है। आपको स्वभावसे अकर्ता व अभोक्ता ही

जब तक जम्बूकुमार अपने मनमें अपने कार्यकी आलोचना कर रहे थे, तब तक रत्नचूलादि राजा इस प्रकार कह रहे थे कि गुण स्वयं निर्गुण होने पर भी अर्थात् गुणमें दूसरा गुण न होने पर भी वे गुण किसी द्रव्यके ही आश्रय पाए जाते हैं। हे स्वामी! आप बडे गुणवान हैं, आपमें ऐसे गुण हैं जिनका वर्णन नहीं हो सक्ता है। दूसरे लोग परकी सहायतासे जय प्राप्त करने पर भी अभिमानसे उद्धत होजाते हैं। आपने विना किसीकी सहायतासे केवल अपने ही पराक्रमसे विजय प्राप्त की है तब भी आप मद-रहित व रागरहित हैं। जिस वृक्षमें आमके फल लदे होते हैं वही झुकता है, फलरहित वृक्ष नहीं झुकता है। हे सौम्यमूर्ति! आपके समान कौन महापुरुष है जो विजयलाभ करके भी शांत भावको धारण करे?

इस तरह परस्पर अनेक राजा स्वामीकी तरफ लक्ष्य करके बातें कर रहे थे कि इतनेमें अकस्मात् व्योमगति विद्याधर बोल उठा— हे स्वामी जम्बूकुमार! जब आप युद्धमें वीरोंका संहार कर रहे थे तब इस मृगांक राजाने भी अपना पुरुषार्थ प्रगट किया था। आपके सामने हे स्वामी! मैं क्या कह सकता हूं, आपका पुरुषार्थ तो वीरोंसे प्रशंसनीय है। जैसा मैंने सुना था वैसा मैंने प्रत्यक्ष देख लिया। मृगांककी प्रशंसा सुनकर रत्नचूल क्रोधमें आकर कहने लगा—रत्न-चूल इस मिथ्या कथनके भारको सह नहीं सका।

रत्नचूलको अपनी हार होनेसे जितना दुःख नहीं हुआ था, उससे

अधिक दुःख मृगांकके बलकी प्रशंसा सुननेसे व उसके मिथ्या अहंकारसे हो गया। कहा है—जो गुण रहित है वह गुणीको नहीं सह मान सक्ता है। गुणवान गुणीको जानकर ईर्षाभाव कर लेता है। वास्तवमें इस जगतमें महान् गुणी भी विरले हैं व गुणवानोंके साथ प्रीति करनेवाले भी विरले हैं। हे व्योमगति विद्याधर! तू बुद्धिमान है, तुझे ऐसे मृषा वचन नहीं कहने चाहिये। कहीं आकाशके फूलोंसे वंध्याके पुत्रका मुकुट बन सक्ता है। मेरी सेना बड़ेर पराक्रमी योद्धासे भी नहीं जीती जासक्ती थी, उसको केवल स्वामी जंबूकुमारने ही जीती है। यदि यह एक वीर योद्धा संग्राममें नहीं होता तो मैं क्या कर सक्ता था सो तुम देख लेते। अभी भी यदि मृगांकको गर्व है तो वह आज भी मेरे साथ युद्ध कर सक्ता है। हम दोनों यहां ही पर विद्यमान हैं। कुमार इस बीचमें माध्यस्थ रहे। केवल तमाशा देखने लगे कि क्या होता है।

मृगांक व रत्नचूलका युद्ध।

रत्नचूलके वचनोंको सुनकर मृगांकको भी क्रोध आगया। ईंधनोंको रगड़नेसे धूआं निकलता ही है। कहने लगा—हे रत्नचूल! जैसा तू चाहता है वैसा ही हो। काला भी सुवर्ण अग्निमें भिड़नेपर शुद्ध होजाता है। अब तू विलम्ब न कर। ऐसा कह कर युद्धके लिये तैयार होगया। कुमारने रत्नचूलको छोड़ दिया। दोनोंमें परस्पर युद्ध छिड़ गया। कुमार मौनसे बैठे हुए तमाशा देखने लगे। कुमारने विचार किया कि बीचमें बोलना ठीक नहीं होगा। माध्यस्थ

रहना ही सुंदर है। यदि मैं मृगांकको मना करता हूं तो इसके बलकी लघुता होती है और मैं मृगांकका पक्ष लेता हूं, ऐसा रत्नचूल विपक्षीको होगा। यदि मैं रत्नचूलको मना करता हूं तो भी रत्नचूलको घमण्ड होजायगा। रत्नचूल और मृगांक दोनोंने कुमारको नमस्कार किया और रणक्षेत्रमें युद्ध करने लगे। दोनों ओरकी सेनाके योद्धा सावधानीसे लड़ने लगे। चारों प्रकारकी सेना परस्पर भिड़ गई। दोनोंने अहंकारमें भरकर राम रावणके समान घोर युद्ध किया। साधारण शस्त्रोंसे युद्ध किये जानेपर कोई नहीं हारा। तब रत्नचूलने क्रोधवान होकर विद्यामई युद्ध प्रारम्भ किया। मृगांक भी विद्यामई युद्धमें सावधान होगया। रत्नचूलने सब सेनामें ऐसी धूल फैला दी कि मृगांककी सेना व्याकुल होगई। तब मृगांकने पवनके शस्त्रसे उस रजको उड़ा दिया। तब अग्निबाण चलाकर रत्नचूलने सेनामें आग लगादी। तब मृगांकने जलकी वर्षा करके अग्निको शांत किया। इस तरह विद्यामई शस्त्रोंसे बहुत देरतक युद्ध हुआ। अंतमें रत्नचूलने नागपाशिसे मृगांकको बांध लिया। अपनेको विजयी मानकर व मृगांकको दृढ़ बंधनोंसे बांधकर रणक्षेत्रसे जाने लगा। तब जम्बूस्वामीने तुर्त मना किया।

हे मूढ़! मैं मृगांकके साथ हूं, मेरे होते हुए तू इसे कहां लिये जारहा है? शेषनागके सिरकी उत्तम मणिको कौन ले सक्ता है? कालके मुखसे कौन अपनेको बचा सक्ता है? महा मेरु पर्वतको कौन हाथसे हिला सक्ता है? सिंहकी शय्यापर सोकर कौन

भी सकता है ? इस तरह तु मेरे रहते हुए घरमें जाकर सुखसे रहना चाहता है, यह बड़े आश्चर्यकी बात है। तुझे लज्जा भी नहीं आती है ? जंबूकुमार यह कह ही रहे थे कि रत्नचूल जंबूस्वामीके सामने युद्ध करनेको तैयार होगया। तब कुमारने कहा कि यदि तू युद्ध करना चाहता है तो मुझ अकेलेसे युद्ध कर। सेनाको भिड़ानेसे क्या लाभ है।

रत्नचूल-जम्बूकुमार युद्ध।

रत्नचूलने बात मान ली, तब दोनों तरफकी सेनाके योद्धा हट गए। तब ये दोनों ही वीर नाना प्रकारके शस्त्रोंसे युद्ध करने लगे। रत्नचूलने कुमारके ऊपर नागबाण छोड़ा, कुमारने उसी क्षण गरुड़ बाणसे उसको निवारण कर दिया। तब रत्नचूलने अग्निबाण चलाया। कुमारने जलकी वर्षा करके आगको बुझा दिया। और रत्नचूलको तोमर शस्त्र मारा। तब रत्नचूलने हाथमें चक्र उठाकर कुमारके मारनेको फिराया। तब शीघ्र ही कुमारने बाण चलाकर उस चक्रके टुकड़े कर दिये। उस चक्रके टुकड़े बिजलीके घातके समान विद्याधरके कंधेपर पड़े। शरीरके अंग उसके घातसे चूर्ण होते देखकर विद्याधर जमीनपर उतरा और क्रोधी होकर कुंत नामके शस्त्रको हाथमें ले लिया। कुमार भी शीघ्र ही हाथीसे उतर पड़े, और रत्नचूलके शरीरमें ऐसी जोरसे मुट्ठी मारी जिससे वह भूमिपर पड़ गया। फिर कुमारने रत्नचूलको बांध लिया। तब मृगांक राजाको शीघ्र ही बंधनसे छुड़ाया। वह मृगांक राजा शरद् कालमें मेघ रहित सूर्यके समान शोभने लगा।

आकाशमें देवोंने कुमार पर पुष्पवृष्टि की। दुंदुभि बाजे बजाए। जय जयकार शब्द किये। वास्तवमें पुण्यरूपी वृक्षके मीठे ही फल होते हैं।

जम्बूकुमारका केरला प्रवेश।

तब मृगांक राजाने वाजित्रोंकी ध्वनिके साथ अन्य राजाओंको लेकर जम्बूकुमारको **केरला नगरीके** भीतर प्रवेश कराया। उस समय व्योमगति विद्याधरको जो संतोष व सुख हुआ वह कहा नहीं जासक्ता है। नगरमें कुमारकी सवारी आरही है तब नगरकी युवतियोंने अनुरागसे कुमारके ऊपर फूलोंकी वर्षा की। कोई स्त्रियां हर्षके मारे मंगलगीत गाने लगीं। तथा परस्पर बात करने लगीं—हे सखी! देखो, यही वह जम्बूकुमार हैं जिन्होंने लीलामात्रमें रत्नचूल विद्याधरको जीत लिया। कोई कहने लगी कि यह कुमार सदा जीवें, इसीने शत्रुओंको मारकर हमारे सौभाग्यकी रक्षा की। इस नरसिंहकी माता सेठ अरहदासकी पत्नी **जिनमती** धन्य हैं, जिसने गर्भमें दश मास रक्खा। वह श्रेणिक राजा धन्य है जिसका यह उत्तम योद्धा है। जिस अकेलेने हजारों योद्धाओंका मान खंडन कर दिया।

मार्गके बाजारोंमें व गलियोंमें व्यापारियोंके कुमारोंने बड़ी शोभा बना दी थी। स्वामी देखते देखते राजमहलके द्वारपर तोरणके पास पहुंच गए। वहांपर रत्न व मोतियोंसे अपूर्व शोभा कीगई थी। कुछ देर कुमार देखते देखते ठहर गए। फिर धीरे २ कुमार राजमंदिरके

भीतर गए। जम्बूकुमारको जो देखता था वह आनंदमय होजाता था। राजा मृगांकने जम्बूस्वामीकी सेवककी भांति बड़ी सेवा की, उनकी स्नानादि क्रिया कराई व नाना प्रकार रसीले भोजन तैयार कराकर कुमारको तृप्त किया। कुमारने सुन्दर भोजनोंसे परम संतोष प्राप्त किया। तब मृगांकने तांबूल दिया व चंदनादि सुगंध द्रव्य लगाया। बहुत बड़ा सत्कार किया।

रत्नचूलको कुमारने छोड़ दिया।

फिर राजसभामें बैठकर दयावान कुमारने रत्नचूल विद्याधरको बन्धनसे मुक्त किया। फिर कामविजयी कुमारने बड़े सुन्दर कोमल वचनोंसे विद्याधरको संतोषित किया–हे विद्याधर! युद्धमें जय पराजय तो होता ही है, यह क्षत्रियोंका धर्म है, इसमें विषाद न करना चाहिये। अब तुम अपने घरमें सुखसे जाओ। और परिवारके साथ रहकर सुख भोगो। रत्नचूलने नम्र वचनोंसे कहा कि हे स्वामी! मैं आपके साथ चलकर श्रेणिक महाराजका दर्शन लाभ करना चाहता हूं।

कुमारका प्रस्थान।

कुछ दिन कुमार वहां ठहरे, फिर विमानपर चढकर श्रेणिक राजाके पास चले। मृगांक भी अपनी रानीको लेकर व विशालवती सती कन्याको विवाहनेके लिये लेकर चला। भक्तिवान रत्नचूल भी चला। और पांचसौ विद्याधर योद्धा विमानोंपर चले। व्योमगति विद्याधर हर्षित–चित्त होकर अपने विमानपर बैठकर कुमारके पीछे पीछे चलने लगा। आकाश विमानोंसे छागया। चलते चलते वे सब

कुरल पर्वत पर आए, जहां श्रेणिक महाराज राजमण्डलके साथ विराजमान थे ।

श्रेणिकसे भेट।

विमानोंको आकाशमें स्थापन करके मृगांक आदि सब विद्याधर उतरे। जंबूकुमार उन सबको श्रेणिक राजाके पास लाए। श्रेणिक महाराजने दूरसे आते देखा तो शीघ्र ही सिंहासनसे उठे और बडे आदरसे कुमारको गले लगाया और कहने लगे कि बहुत दिनोंके पीछे आज तुम्हें देखकर मेरे हृदयमें बड़ा ही हर्ष उत्पन्न होगया। तब व्योमगति विद्याधरने सर्व वृत्तांत श्रेणिकसे निवेदन किया और जो जो महानुभाव पधारे थे उनको अपने हाथसे बताकर उनके नाम सुनाए। हे देव! यह राजा मृगांक है जो आपको अपनी कन्या देते हैं। यह उनकी पटरानी मालती लता है। यह विद्याधरोंमें मुख्य रत्नचूल है, जिसको बडे २ योद्धा नहीं जीत सके थे, परन्तु कुमारने उन्हें जीत लिया।

इन वचनोंको सुनकर श्रेणिक राजाका आनन्द उसी तरह बढ़ गया, जिस तरह चंद्रमाके उदयसे समुद्र बढ़ जाता है। तब श्रेणिकने कुमारकी वार वार प्रशंसा की। जिससे उपकार पहुंचा हो उसकी तरफ राजाका स्वभावसे ही मृदु भाषण होना ही चाहिये।

श्रेणिकका विशालवतीसे विवाह।

तब मृगांकने अपनी कन्या विशालवती वहीं श्रेणिकको अर्पण कर दी। विवाहका उत्सव होने लगा। विद्याधरोंको बडा हर्ष हुआ।

स्त्रियां मंगल गीत गाने लगीं। प्रतापशाली श्रेणिकने मृगांक और रत्नचूलका मैत्रीभाव करा दिया। तब श्रेणिकने सर्व विद्याधरोंका यथोचित सन्मान करके विदा किया। सब जन लौट गए। व्योमगति विद्याधर भी स्वामीका कार्य सफल करके अपनेको कृतकृत्य मानता हुआ अपने स्थान गया।

रघुराय कुमारका राजगृही आना।

मगधराज श्रेणिक विशालवतीको लेकर राजगृहीकी तरफ चले। कुमार भी साथ थे। चलते हुए राजाने विन्ध्याचल पर्वतके जंगलको उलंघा। मार्गमें राजा नवीन वधूके साथ वार्तालाप करते हुए जारहे थे। हे मृगनयनी! देख, ये मृग-समूह तेरे नेत्रोंको ईर्षासे देखनेके लिये आए हैं। हे बाले! इन सुंदर हाथीके समूहोंको देख, जिनकी उपमा तेरे गमनको दी जाती है। हे कृश कटिवाली! इस सिंह-नीको देख, जिसको तूने अपनी कमरसे जीत लिया है। हे सुंदर स्तनधारिके! तू इन शूकरोंको देख, जो ऊंचा मस्तक किये हुए हैं। हे विशालाक्षी! इन बन्दरोंके समूहोंको देख, जिनकी चंचलताको तेरे चित्तके चमत्कारने जीत लिया है। हे कोकिलवचनी! इन कोयलोंकी ध्वनि सुन, तेरी वाणीने उनके स्वरोंको तिरस्कार कर दिया है।

वनकी शोभा।

हे मृदुभाषिणी! इस तरफ तू हंसका रुदन सुन जो हंसनीसे मिलनेके लिये उसे याद कर रहा है। हे सुन्दरी! सरोवरके तटोंपर बगलोंकी

पंक्तिको देख। तेरे कंठमें मोतियोंकी माला जैसी है वैसे वे शोभते हैं। हे चकोर नयनी! उस चक्र-युगलको देख जो चंद्रमाके उदयकी शंकासे तेरे मुखको देख रहा है। खेद बढ़ानेवाली चातककी ध्वनि सुन जो परम प्रीतिसे प्रिये प्रिये, कहकर रटन लगा रही है। हे मनमोहने! आम्र वृक्षोंमें लगी हुई पीली पीली मंजरीको देख, जो तेरे कर्णके सुवर्ण आभूषणोंके साथ स्पर्श कर रही है। इस वनके भीतर भ्रमर समूह गुंजार कर रहे हैं। मानो तेरे गुणके स्तोत्र रूपमें अक्षरोंको ही लिख रहे हैं। मोरोंकी ध्वनिको सुन, जो दूरसे होरही है वे सेनाकी रजसे आकाशको छाया हुआ देखकर मेघकी ही शंका कर रहे हैं। हे कमलनयने! इन कमलोंकी पंक्तिको देख, जो भ्रमरोंसे शोभायमान है। तेरे मुखकी शोभा उनको जीत रही है। हे प्रिये! कोमल पत्तोंसे शोभित बेलोंको देख, जिसके पत्ते तेरे हाथके स्पर्शसे स्पर्श कर रहे हैं। अर्थात् तेरे हाथका स्पर्श पत्तोंके स्पर्शसे भी अधिक कोमल है। हे कांते! इन पुष्पोंकी बहारको देख, जो तेरे मुखको देखकर आनंदमें भरकर प्रफुल्लित होरहे हैं। इस तरह अपनी प्रिया विशालवतीको भोगकी शोभा बताते हुए राजा श्रेणिक राजगृह नगर पहुंच गए।

सुधर्माचार्यका दर्शन।

राजगृहके उपवनमें राजा श्रेणिक सेना सहित कुछ देर ठहरे। देखते क्या है कि उस वनमें पांचसौ शिष्य मुनियोंसे वेष्टित सुधर्माचार्य मुनि धर्मोपदेश देते हुए विराजमान हैं। महा भाग्यवान

राजाने सस्त्रीक कुमार सहित तीन प्रदक्षिणा देकर मुनिराजको नम-स्कार किया। राजा श्रेणिक गुरुमहाराजका दर्शन पाकर अपना जन्म सफल मानने लगा। दर्शन करके राजा श्रेणिक सेना सहित अपने राजमहलमें जानेके लिये नगरके भीतर चल पड़ा। राजलक्ष्मी व जयलक्ष्मीको लिये हुए राजाने बड़ी शोभाके साथ राजमन्दिरमें प्रवेश किया। कहा है—

धर्मकल्पद्रुमः सेव्यः किमन्यैर्बहुजल्पितैः।

यत्पाकादर्थकामादिफलं स्यात्पावनं महत् ॥ १४५ ॥

भावार्थ-और अधिक क्या कहें-धर्म कल्पवृक्षके समान चिंतित फलदायक है, इसकी सेवा सदा करनी चाहिये। धर्मके ही फलसे धनकी व कामादि भोगोंकी प्राप्ति होती है। धर्महीसे महान पुण्यबन्ध होता है और फलता है।

आठवा अध्याय।

जंबूस्वामी विवाहोत्सव।

(श्लोक ११८ का भावार्थ।)

धर्मकी सिद्धिके लिये धर्म तीर्थके स्वामी श्री धर्मनाथ तीर्थंकरकी स्तुति करता हूं तथा आठ कर्मोंकी शांतिके लिये श्री शांतिनाथको नमस्कार करता हूं।

जम्बूकुमारका पूर्वजन्म वृत्त श्रवण।

श्री जम्बुकुमारने अपने मनमें विचार किया कि किस पुण्यके उदयसे मैंने यश और लक्ष्मी प्राप्त की है, तब इस प्रश्नका समाधान पानेके लिये वह श्री सुधर्माचार्यके पास आया और विनयपूर्वक नमस्कार करके बैठ गया। अवसर पाकर कहने लगा–हे मुनिनाथ! कृपाकर मेरा संशय छेद कीजिये। मैं किस पुण्यके उदयसे यहां जन्मा हूं, मैं कौन था, कहांसे आकर जन्मा हूं। हे स्वामी! आप तो वीतरागी हैं, सुख दुःखमें समान हैं, आप शत्रु मित्रमें समदर्शी हैं, जीवन मरणमें सम हैं, स्तुति व निंदामें सदृश हैं, हरिचन्दनकी सुगन्धके समान शांत हैं। तौभी आपके मुखारविंदसे अपने पूर्व-जन्मका वृत्तांत सुनना चाहता हूं। हे मुनिराज! आप भक्तवत्सल हैं, संसार सागरसे तारनेवाले हैं, आप जीवनन्मुक्त हैं, व सर्व जंतु-ओंपर दयालु हैं। तब धर्माचार्य सौधर्म मुनि कहने लगे–हे वत्स! तेरे पूर्वजन्मका वर्णन करता हूं, तू सुन।

इसी मगध देशमें वर्द्धमान नामका बड़ा ग्राम था। उसमें दो निकट भव्य ब्राह्मण रहते थे। बड़ेका नाम भावदेव था और छोटेका नाम भवदेव था। क्रमसे दोनोंने सर्व सुखदायी जैन धर्मकी दीक्षा धार ली। समाधिमरणसे वे दोनों मरके सनत्कुमार स्वर्गमें देव उत्पन्न हुए। आयुके अंत होनेपर वहांसे च्युत होकर बड़े भाई-भावदेवका जीव वज्रदंत राजाका पुत्र सागरचंद्र हुआ। छोटा भवदेवका जीव महापद्म चक्रवर्तीका पुत्र शिवकुमार पैदा हुआ। दोनोंहीने घोर तप व व्रत पाले। दोनों समाधिसे मरके छट्ठे ब्रह्मोत्तर स्वर्गमें देव हुए। भवदेवका जीव श्रीप्रभ विमानमें और भावदेवका जीव जलकांत विमानमें देव हुआ। वहां १० सागरकी आयु भोग करके दोनोंमेंसे भावदेवका जीव भरतक्षेत्रमें उत्पन्न हुआ। यही मगध देश अनेक नगरोंसे शोभायमान है। यह जैन धर्मका स्थान है। वहां निरन्तर मुनिविहार करते हैं। इस देशमें संवाहनपुर सुन्दर नगर है, जहां उत्तम महिलाओंसे शोभित पंक्तिबन्द घर हैं। उस नगरका राजा सुप्रतिष्ठ था, जो जैन धर्म कमलके भीतर भ्रमरके समान आसक्त था। उसकी धर्मात्मा पटरानी रूपवती थी। वह शीलवती थी व सुन्दरता व गुणकी खान थी। भावदेवका जीव वह देव छट्ठे स्वर्गसे आकर इस पटरानीके सौधर्म नामका पुत्र हुआ, जो क्रमसे बढ़कर थोड़े ही वर्षोंमें सर्व शास्त्रोंका ज्ञाता होगया। कुमार-वयमें ही घरमें दीपक समान शोभता था।

एक दिन सुप्रतिष्ठ राजा पटरानी सहित श्री महावीर भगवानके

समवशरणमें वंदनाके लिये पधारे। श्री वर्द्धमान भगवानके मुखकमलसे धर्मोपदेश सुना। सुनकर उसका मन भोगोंसे उदास होगया। अपने मनमें विचारने लगा कि यह संसार असार है, चंचल है, धनादि सब जलके बुद्बुदके समान क्षणिक हैं। उसी दिन उस राजाने आठ कर्मोंको नाश करनेके लिये सर्व परिग्रह त्याग कर स्वर्ग व मोक्ष-सुखको देनेवाली निर्ग्रंथकी दीक्षाको ग्रहण कर लिया। कुछ दिनोंके पीछे सुप्रतिष्ठ मुनि सर्व श्रुतके पारगामी होगए। तथा वर्द्धमान जिनेश्वरके ग्यारह गणधरोंमें चौथे गणधर हुए। अपने पिता गणधरको एक दिन देखकर सौधर्मने भी कुमार वयमें वैराग्यवान हो, मुनिपदको स्वीकार कर लिया। वह फिर श्री वीर भगवानका पांचमा गणधर होगया। वही मैं तेरे सामने भावदेवका जीव सुधर्म नामका बैठा हूं और तू भवदेवका जीव है। ऐसा तू अपने पूर्व जन्मका वृतांत जान। हे वत्स! संसारी जीव कर्मोंके आधीन होकर अपने कर्म विनाशक वीतराग भावको न पाते हुए संसारमें भ्रमण किया करते हैं। तुम छट्टे स्वर्गमें विद्युन्माली देव थे, सो वहांसे आकर सेठ अर्हद्दासके सुखकारी पुत्र हुए हो। तेरी स्वर्गकी चारों देवियां भी वहांसे च्युत होकर सागरदत्त आदि श्रेष्ठियोंकी चारों पुत्रियां जन्मी हैं। उन चारोंके साथ तेरा विवाह होगा। वे पूर्व स्नेहवश ही तेरी चार भार्या होंगी।

जम्बूकुमारका वैराग्य।

मुनिराजके मुखसे अपना भवांतर सुनकर जंबूस्वामी कुमारके

मनमें तीव्र वैराग्य बढ़ गया। विनय पूर्वक प्रार्थना करने लगा कि मैं संसार शरीर भोगोंसे विरक्त होगया हूं। आप मेरे विनाकारण परम बंधु हैं। आप मेरा संसारसागरसे उद्धार कीजिये। कृपा करके मुझे निर्ग्रन्थ दीक्षा प्रदान कीजिये, मेरी इच्छा भोगोंमें नहीं है, आत्माके दर्शनकी ही भावना है। कुमारकी वाणीको सुनकर महामुनि समाधानकारी वचन साम्य मुखसे कहने लगे। वह अवधिज्ञानके बलसे जान गए कि वह अति निकट भव्य है। भाषा समितिकी शुद्धिसे कोमल वाणी प्रगट करने लगे। हे वत्स! तेरी अवस्था क्रीड़ा करने योग्य है। कहां तेरी वय और कहां तेरा यह कठिन दीक्षाका श्रम जो महान पुरुषोंसे भी कठिनतासे पालने योग्य है। यदि तेरे मनमें दीक्षा लेनेकी तीव्र उत्कंठा है तो तू अपने घरमें जा। वहां बंधुवर्गोंको पूछकर उनका समाधान करके परस्पर क्षमाभाव करादे, फिर लौटकर इस कर्म क्षयकारी निर्ग्रंथ दीक्षाको ग्रहण कर। यही पूर्वाचार्योंके द्वारा बताया हुआ दीक्षा लेनेका क्रम है।

सौधर्मसूरिके वचनोंको सुनकर जंबूकुमार विचारने लगा कि यदि मैं अपने भीतरी हठसे घर नहीं जाता हूं तो गुरुकी आज्ञाका लोप होना ठीक नहीं होगा। इससे मुझे शीघ्र ही अपने घर अवश्य जाना चाहिये। पीछे लौटकर मैं अवश्य इस दीक्षाको ग्रहण करूंगा। ऐसा मनमें निश्चय करके कुमारने सौधर्म गुरुको नमस्कार किया और अपने घर प्रस्थान किया। घर पहुंचकरके कुमारने अपनी माता जिनमतीको विना किसी गुप्त बातको रक्खे हुए अपने

मनका सर्व हाल जसाका तैसा कह दिया। हे माता! मैं अवश्य इस संसारसे वैराग्यवान हुआ हूं, अब तो मैं अपनी हथेलीमें रक्खा हुआ ही आहार ग्रहण करूंगा।

इस वार्तालापको सुनकर सती जिनमती कांपने लगी जैसे मानो पवनका झोका लगा हो। फलैसे कमलिनी मुरझा जाती है इस-तरह जिनमती उदास होगई। कहने लगी—हे पुत्र! ऐसे वज्रपा-तके समान कठोर वचन क्यों कहे? इस कार्यके होनेमें अकस्मात् क्या कारण हुआ है सो कह। तब कुमारने समाधान करते हुए जो कुछ सुधर्माचार्यने वर्णन किया था सो सब कह दिया।

जंबूकुमारके पूर्वजन्मकी वार्ता सुनकर जिनमतीके भीतर धर्म-बुद्धि उत्पन्न हुई। चित्तको समाधान करके उसने सेठ अरहदासके आगे सर्व वृत्तान्त कह दिया कि यह चरमशरीरी कुमार है यह जैन दीक्षाको लेना चाहता है। अर्हद्दास इस वचनको सुनते ही मूर्छित होगया, महा मोहका उदय आगया, हाहाकार शब्द रटने लगा। किन्हीं उपायोंसे सेठजीने मूर्छा छोड़ी, फिर उठकर इसतरह आकुल हो विलाप करने लगा कि उसका कथन कौन कवि कर सक्ता है। फिर समाधान-चित्त होकर अर्हद्दासने एक चतुर दूतको भेजा कि वह यह सब बात समुद्रदत्त आदि सेठोंको कहे। वह दूत शीघ्र ही पहुंचा और चारों सेठोंको एकत्र कर विवाहका निषेधक निवेदन किया। अंतमें कहा कि आपके समान सज्जनोंका समागम बडे भाग्यसे मिला था सो हमारा दुर्भाग्य है कि अकस्मात् विघ्न आ खड़ा हुआ।

वज्रपातके समान दुःखदाई इन कठोर वचनोंको सुनते ही चारों सेठ कांपने लगे, मनमें आश्चर्य हो आया। शोचसे आंखोंमें पानी आगया, आकुलित होकर कहने लगे। क्या कुमार कहीं अन्य कन्यासे विवाह करना चाहते हैं, या कोई और कारण है सो सच सच कहो। तब दूतने बड़ी चतुराईसे यह सच बात कह दी कि अहो जम्बूस्वामी तो संसारसमुद्रसे शीघ्र तरना चाहते हैं। वह संसारके दुःखोंसे भयभीत हैं। निश्चयसे कामभोगोंसे उदासीन हैं, उनके भीतर मुक्तिरूपी कन्याके लाभकी भावना है। वे अवश्य जैनधर्मकी दीक्षा ग्रहण करेंगे। इस बातको सुनकरके चारों सेठ उदास होगए। और घरके भीतर जाकर उन कन्याओंको बुलाया और उनको समझाने लगे। वे कन्या मन, वचन, कायसे कुलाचार व शीलव्रतको पालनेवाली थीं। हे पुत्री! सुनाजाता है, जंबूकुमार भोगोंसे उदास होगये हैं व मोक्षलाभके लिये तप पूर्वक व्रत लेना चाहते हैं। जैसी उनकी इच्छा, उनको कौन रोक सक्ता है? अभी तक हमारी कोई हानि नहीं है, तुम्हारे लिये दूसरा वर देखलिया जायगा। कहा है—

तदूगृह्णातु यथा ..मं का नो हानिस्तु सांप्रतम्।
भवतीनां समुद्वाहे भवेद्वाद्य वरोऽपरः ॥ ७० ॥

कन्याओंकी विवाहकी दृढ़ता।

पिताके इन वचनोंको सुनकर पद्मश्री उसी तरह कांपने लगी जैसे कोई योगीके प्रमादसे प्राणीकी हत्याके होजानेपर योगीका तन कंपित होजाता है। पद्मश्री कहने लगी—हे पिता! ऐसे लज्जाकारी अशुभ वचन

आपको नहीं कहने चाहिये। महात्माओंका धर्म है कि प्राण जानेपर भी लोक मर्यादाको कभी न तोड़े। जैसे सम्यग्दृष्टी महात्माके लिये सर्व दोष रहित एक अरहन्त आप ही देव हैं व एक जिन धर्म ही पूजनेयोग्य है वैसे ही मेरे तो एक जंबूकुमार ही भर्तार हैं। मेरा तो यह पक्का नियम है कि उनके सिवाय मेरा पति कोई नहीं होसक्ता है। इन्द्रजालके समान विषयभोगोंको धिक्कार हो कि पति तो दीक्षा ले जावे और हम उपपतिमें रत हों। कहा है—

एक एव यथा देवः सर्वदोषविवर्जितः ।
अर्हन्निति त (स) दाख्यातो धर्मश्चैको महात्मनाम् ॥ ७३ ॥
तथा जम्बूकुमारोऽयं भर्ता चैको हि मामकः ।
नापरः कश्चिदेवातो नियमो मे निसर्गतः ॥ ७४ ॥
धिग्भोगान्विषयोत्थानिन्द्रजालोपमानिह ।
पतौ गच्छति दीक्षायै वयं तूपपतौ रताः ॥ ७५ ॥

(नोट—यहां आदर्श चारित्र झलकाया है। जब किसीका विवाह सम्बन्ध पक्का होजाता है, तब मनसे या वचनसे विवाह हो जाता है। केवल काल द्वारा सम्बन्ध बाकी रहता है। इसलिये आदर्श शील पालनेवाली कन्याएं सिवाय जंबूकुमारके औरको अपना स्वामी बनाना शीलमें दोष समझती हैं।) यदि हमको भोग सम्पदा भोगनी होगी तो हमारे भाग्यके उदयसे वह कुमार अवश्य ही घरमें रुक जांयगे। यदि मेरे कर्मोंके उदयसे भोगोंका अन्तराय होगा, तो बहुत उपायोंसे मना करने पर भी वह अवश्य तपोवनको जांयगे।

तो भी मेरे मनको कोई संताप न होगा क्योंकि जो बात होनेवाली है, इसे कोई औरकी और नहीं कर सक्ता है, यह मुझको निश्चय है। और अधिक क्या कहूं। हे पिताजी! आप इस संबन्धमें अधिक न कहें। मेरे पति तो सर्वथा जम्बूस्वामीकुमार ही हैं।

पुत्रीके वचन सुनकर सागरदत्त सेठने बाहर आकर यह सब वर्णन दूतको कह दिया। दूत तुर्त ही अरहदास सेठके घर गया, और जो कुछ कन्याकी कथा थी, सो सर्व सेठको कह दी। इतनेहीमें सूर्य अस्ताचलको चला गया। संध्याका समय होगया सो ठीक है। संत पुरुष परकी विपत्तियां देख नहीं सक्ते। अर्हदास सेठ यह न समझ सका कि क्या करना चाहिये। कुमारके पास जाकर प्रार्थना करने लगा कि एक दिन भी आप ठहर जावें, विवाहके पीछे एक दफे भी उन कन्याओंके साथ सहवास करना चाहिये। हे पुत्र! मेरी इस प्रार्थनाको निष्फल न कर, पीछे जो तुम्हें रुचे सो करना।

यद्यपि कुमारको विवाहकी इच्छा नहीं थी। तथापि पिताके अति आग्रहसे उसने यह बात स्वीकार कर ली। कहा कि हे पिताजी! चित्तमें शोक न करो, जो आपकी इच्छा है वह पूर्ण होगी।

विवाहोत्सव।

तब उसी समय चारों सेठोंको खबर दी गई। अब अर्हदास सेठके यहां व उन चारो सेठोंके घरोंमें मांगलीक बाजे बजने लगे, आनंदभेरी बजने लगी। युवती स्त्रियां प्रसन्न होकर मंगल गीत गाने लगीं।

कुमार घोड़ेपर चढ़ गये। विवाहके योग्य सब सामग्री व सामान साथ लिया। अनेक वादित्रोंके साथ कुमार मार्गमें चलने लगे। बंदीजन जम्बूकुमारका यश गान करते जाते थे। नगरके नर-नारी जगह जगह कुमारको देखकर हर्षित होते थे। शनैः २ कुमार सागरदत्त सेठके महलपर पधारे। घोड़ेसे उतर, विवाह मण्डपमें जाकर मौन सहित बैठ गये। विवाह क्रिया होने लगी। विना इच्छा होते हुए भी कुमारने पाणिग्रहणके लिये अपना हाथ दे दिया। विवाहके पीछे सागरदत्तादि सेठोंने सुवर्ण–रत्नादि सामग्री हर्षपूर्वक दी। नानाप्रकारके सुन्दर वस्त्र, सुगंधित द्रव्य, पलंग आदि वस्तु सेठोंने दीं। हाथी, घोड़े, धन, धान्य, दास, दासी आदि जो कुछ उत्तम वस्तु थीं सो सब स्वामीको भेट कीं। उन चारों कन्याओंके साथ गठजोड़ा बांधे हुए कुमार रातको ही स्त्रियोंको लेकर बड़े उत्सवके साथ पधारे।

उस समय वर-वधूके घर आनेपर जो कुछ उचित क्रिया थी सो सब अर्हद्दास सेठने की। जिसको जो कुछ देना था सो बड़े स्नेहसे दिया। जिनमतीने भी अपनी सखियोंको व मान्य स्त्रियोंको वस्त्र दिये। अपने घरमें जितने आए थे सबका यथायोग्य सन्मान किया। इतनेमें निद्रा सबकी आंखोंमें आने लगी। सब शयन करनेको चले गए। सखियोंने हर्षित नेत्रोंसे कुमारको एकान्त भवनमें चारों स्त्रियोंके साथ बिठा दिया। सुन्दर प्रकाशमान दीपक जलते थे। हंसके समान सफेद रुईकी बुनी शय्यापर कुमार चारों स्त्रियोंके साथ बैठ गए। स्वामी मौनसे विरक्त भावसे बैठे हैं। जैसे

कमलका पत्ता जलमें अलिप्त रहता है वैसे स्वामी संसारसे विरक्त थे। न तो स्वामी कुछ कहते हैं, न उन स्वरूपवती स्त्रियोंकी ओर देखते हैं, स्वामी तो तरङ्ग रहित समुद्रके समान परम निश्चल हैं। जैसे आकाशमें तारागणोंका समुह निर्मल शोभता है वैसे ही चारों स्त्रियोंका दल मोतियोंका हार आदि आभूषणोंसे वेष्ठित शोभता था।

जम्बूस्वामी शयनागारमें।

उन चार युवतियोंके परिणामोंमें कामकी अग्नि प्रज्वलित होने लगी तब वे परस्पर वार्तालाप करने लगीं, अपने कामके अंगोंको दिखाने लगीं, कभी हंसने लगीं, स्त्रियोंके हावभाव विलास प्रदर्शित करने लगीं, मनोहर गीत गाने लगीं, नानाप्रकार कामकी चेष्टाओंसे उद्यम किया कि स्वामीका मन विचलित हो परन्तु स्वामीको जरा भी न हिगा सकीं। स्वामी कैसे थे, कहा है—

इतिसुकृतविपाकात्स्वामिजम्बूकुमारः।
सकलसुखनिधानो मारमातंगसिंहः॥
कृतपरिणयकर्मा धर्ममूर्तिर्विरक्तो।
विषयविरतचेताः स्यात्समासन्नभव्यः॥ ११८॥

भावार्थ—स्वामी जम्बूकुमार पूर्वकृत पुण्यके उदयसे सर्व सांसारिक सुख सामग्रीको लाभ कर चुके थे। विवाहकर्म भी पिताके आग्रहसे कर चुके थे परन्तु वे अति निकट भव्य थे, धर्ममूर्ति थे, कामदेव रूपी हाथीको जीतनेके लिये सिंहके समान थे, संसारसे विरक्त थे, इंद्रियोंके विषयभोगोंसे अत्यन्त उदासीन थे।

नौवां अध्याय ।

जम्बूकुमारका चारों स्त्रियोंसे वार्तालाप व विद्युच्चरका समागम ।

(श्लोक २३१ का भावार्थ ।)

कुंथु आदि क्षुद्र जंतुओंके दयालु व धर्मतीर्थके विधाता श्री कुन्थुनाथको तथा मुक्ति-वधूके वर अरनाथ तीर्थंकरको कर्म-शत्रुओंके नाशके लिये मैं वंदना करता हूं ।

जम्बूस्वामीको वैराग्यभाव ।

इन चारों स्त्रियोंकी कायकी विक्रियाको देखकर जम्बूस्वामी परम ज्ञानी वैराग्यकी भावना भाने लगे, मोहनीय कर्मके उदयसे होनेवाले इस अज्ञानको धिक्कार हो, जिसके वशमें पड़कर संसारी प्राणी दुःखको ही सुख मान लेते हैं। जैसे वनके मृग प्यासे होकर मरीचिकाको अर्थात् चमकती हुई बालू या घासको जल जानकर पीनेको दौडते हैं वैसे संसारी प्राणी इंद्रियोंके विषयोंमें सुख जानकर विषयोंकी इच्छा करते हैं। जैसे खुजलीका रोगी अपने कठोर नाखूनोंसे खुजाता हुआ अपने शरीरके दुःखको भूलकर अच्छा मान लेता है वैसे ये प्राणी इंद्रियोंके भोगोंमें सुख मान लेते हैं। इन्द्रियाधीन सुख सुख नहीं है, सुखसा दिखता है। यह इन्द्रिय सुख पराधीन है, बाधा सहित है, क्षणभंगुर है व बन्धका कारण है, इसी

लिये महात्माओंने इसे छोड़ने योग्य कहा है। सच्चा सुख इन्द्रियोंकी पराधीनतासे रहित स्वाधीन अतीन्द्रिय है, बाधा रहित है, नित्य है, आकुलता रहित है, स्वात्मसुखके प्रेमी साधुको निरन्तर स्वादमें आता है।

इस आत्मीक आनन्दको न जानकर अज्ञानी जन अपनी अविवेकपूर्ण बुद्धिके दोषसे विषयोंमें आसक्त होकर सुख है ऐसा कहता है। ऐसा जीव स्त्रियोंके जालसे दृढ़ बंधा हुआ इस इन्द्रिय सुखमें मग्न होकर उसी तरह दुर्गतिमें जाकर क्लेश भोगता है जैसे मृग शिकारीके जालमें पकड़ा जाकर दुःख उठाता है। कोई लोग आशीविष सर्पको, कोई दंदशूक सर्पको भयानक कहते हैं। मैं तो स्त्रियोंको उनसे भी अधिक भयानक मानता हूं। इन स्त्रियोंके कटाक्ष मात्रसे कामी पुरुष पीड़ित होकर कामकी अग्निसे जला करते हैं जैसे मृग बाणके लगनेसे पीड़ित हो तडफडता है। बडे खेदकी बात है कि मूर्ख प्राणी अपने ही स्वाधीन अतीन्द्रिय सुखको छोड़कर क्यों इस असार स्त्रीके शरीरमें मोहित होकर मदिरापायीके समान कष्ट पाते हैं। इस जगतमें जो सबसे निंदनीय वस्तु है वह स्त्रीका शरीर है। यह शरीर मल, मूत्र, रुधिर, मांस, हाड़ आदिके समूहसे भरा है। दूसरी जो कोई वस्तु स्वभावसे सुंदर व पवित्र होती है वह इस शरीरके संसर्गसे क्षणमात्रमें दुर्गंधमय होजाती है। हलाहल विषधारी सर्पके समान ये सर्व ही स्त्रियां हैं। विधाता कर्मने प्राणियोंको बांधनेके लिये जालरूपमें इनको बनाया है।

पद्मश्रीकी वार्ता।

स्वामी मनमें ऐसा विचार ही रहे थे कि इतनेमें पद्मश्री दूसरी तीन स्त्रियोंसे कहने लगी—अरी सखी! इस निर्गुण पुरुषकी खुशामदसे क्या लाभ! नपुंसकमें कामके बाण क्या असर पैदा कर सकते हैं। अन्धेके सामने नाचनेसे क्या, बहिरेके सामने गानेसे क्या, कायरके पास खड्ग होनेसे क्या, कृपणके पास लक्ष्मीसे क्या? ये सब वृथा हैं। हे सखी! विदित होता है कि यह पूर्व तपके फलसे प्राप्त भोगोंको छोड़कर फिर तप करके उपभोगोंको प्राप्त करना चाहते हैं। जैसे किसी मूर्ख मनुष्यके घरमें भोजन तैयार है, उसको तो छोड़दे, अज्ञान व प्रमादसे घर२ भीख मांगता फिरे। तपका फल सांसारिक सुख है, वह चाहे स्वर्गमें मिलो, चाहे मध्यलोकमें मिलो। खेदकी बात है कि मूर्ख इस प्रत्यक्ष बातको भूल जाता है। हम सब लक्ष्मीके समान स्त्रियां हैं। यह घर स्वर्गके समान है, सुन्दर शरीर है, घरमें सम्पदा है, सर्व दुर्लभ वस्तु है। इससे अधिक क्या चाहिये। जो कोई इन सर्व प्राप्त स्वाधीन सामग्रीको छोड़कर आगेकी आशासे तप करना चाहता है कदाचित् आगे भोग न प्राप्त हुए तो वह मानव मूर्ख व विवेक रहित ही कहा जायगा। हे सखियो! इसी बातकी दृष्टांतरूप एक रमणीक कथा है वह मैं कहती हूं, आप सब सावधान होकर सुनें।

पद्मश्रीकी कथा।

पद्मश्री धनदत्तकी कथा कहने लगी। एक धनदत्त नामका

किसान था। उसकी स्त्रीका नाम भी धनदत्ता था। उनका एक युवान पुत्र था जो गृहकार्यकी सम्हाल करनेमें समर्थ था। धर्मोंके उदयसे किसानकी स्त्रीका देहांत होगया। जैसे–किसीको स्वप्नमें लक्ष्मी मिले, आंख खोले तब जाती रहे।

फिर किसानने अपने बडे लड़केका विवाह कर दिया। परन्तु स्वयं कामातुर होकर साठ वर्षका होनेपर भी सोलह वर्षकी लड़कीके साथ विवाह कर लिया। एक रातको वह अपनी स्त्रीके साथ बैठा था। वह स्त्री यकायक क्रोध करके रूठ गई, मान करके बैठ गई। वह किसान मीठे वाक्योंको कहकर उसको मनाने लगा, खुशामदके भरे वचन कहने लगा–हे प्रिये! मेरी तरफ देख। और कहा–तेरे अकस्मात् क्रोध करनेका क्या कारण है? अपने पतिको अपने अनुकूल देखकर वह कहने लगी–तू मुझे स्पर्श न कर, तू मेरी बातको स्वीकार नहीं करता है, तूने अज्ञानसे मेरे प्रेमको खंडित कर दिया। नीतिका श्लोक है:—

"पानीयं च रसः शीतं परान्नं सादरं रसः।
रसो गुणयुता भार्या मित्रश्चानंतरो रसः" ॥ ३६ ॥

भावार्थ–पानी ठंढा तो रसयुक्त होता है, दूसरेके यहां भोजन आदर सहित मिले तो रसीला होता है, गुणवती स्त्री रसवती होती है, जिसके साथ कोई भेद न रक्खा जाय वही मित्र रसयुक्त होता है।

ऐसा सुनकर वह किसान कहने लगा–हे प्रिये! तू अपने मनकी बात कह। जब बहुत विनती करी तब वह पापका अभिप्राय

मनमें धारकर कहने लगी—तुम्हारा पुत्र बलवान है, इसको निश्चयसे मार डालना चाहिये। इस भयंकर बातको सुनकर किसान कांपने लगा और बोला—अरे! यह काम बड़ा दुष्ट है। मैं कैसे कर सक्ता हूं! तू मुझे बता, उसके मारनेसे क्या भला होगा। बिना किसी उद्देश्यके मन्द बुद्धि भी कोई काम नहीं करता है। वह स्त्री बड़ी चतुराईसे बात बनाकर कहने लगी—उसके मार डालनेसे बहुत भला होगा। सुनो—मेरे उदरसे जो पुत्र पैदा होंगे उन सबको इसका दासपना करना पड़ेगा। इसमें कोई संशय नहीं है। इसलिये इसका वध करना सर्वथा उचित है। हे स्वामी! इस कामको कर डालो।

इन वचनोंसे उसका मन कुछ विचलित हुआ। मनमें कुछ दया भी थी। किसानने कहा—मेरा पुत्र निरपराध है, उसका मैं कैसे वध कर सक्ता हूं। यही एक इस घरका सब बोझा ढोता है, सर्व घरका निर्वाह करता है। यदि मैं उसको मार डालूं तो राजा मुझको दंड देगा। सर्व बांधव भी मुझे दोषी कहेंगे। फिर वह दुष्ट चित्तधारिका भामिनी कहने लगी—इसका वध तो करना ही होगा, नहीं तो हम दोनोंको सुख नहीं होसक्ता। इसके मर जानेके बाद मेरे गर्भसे जो पुत्र पैदा होंगे वे बुढापेमें हमारी सेवा भले प्रकार करेंगे। मैं तुझे ऐसा उपाय भी बताती हूं जिससे उसका वध भी होजावे, न राजाका भय हो, न बांधव क्रोध करें।

खेतमें जाकर जब वह धीरे धीरे हल चलाता हो, तब तुम भी उसीके पीछे हल चलाना, उसमें कठोर सींगवाले मारनेवाले बैल जोड़ना,

मार कर जोरसे चलाना तब बैल सींग उसके शरीरमें भोंक देंगे, तुम भी पीछेसे मारना, वह मर जायगा। ऐसा करनेसे बैलका दोष होगा, न राजा तुमको दंड देगा, न बंधुजन तुम्हें दोषी बनाएंगे। अपनी स्त्रीकी इस बातको कामसे अंधे किसानने मान ली। उसको संतोषित किया कि मैं ऐसा ही करूंगा, तब उसके साथ काम क्रीडा करने लगा। उसका पुत्र पासके ही घरमें सोता था। उसने उन दोनोंकी सब बातें सुन ली थीं। वह बड़े सवेरे ही उठकर खेतमें हल लेकर चला गया। पीछेसे वह किसान भी पुत्र वधके भावसे खेतमें पहुंचा। उसके पुत्रने धान्य पके हुए खेतमें हल चलाना प्रारम्भ किया, तब किसानने देखा कि धान्यका खेत पका खड़ा है यह उसको नाश कर रहा है। अपने पुत्रसे कहा—अरे! तू बड़ा मूर्ख है, तू इन पके धान्यको नाश क्यों कर रहा है? क्या तू बावला होगया है? सुनकर पुत्र कहने लगा कि यह धान्य खेत पुराना पड़ गया है, उसको उखाड़ कर नवीन धान्य बोऊंगा, जिससे आगे सुख होगा। इन वचनोंको सुनकर किसानने कहा—हे पुत्र! तेरी बुद्धि ठीक नहीं है, जो तू पके खेतको नाश करके नवीन खेतीकी इच्छा करता है। पिताके छलको जाननेवाला पुत्र कहने लगा—हे पिता! रात्रिको जो बात तुमने कही थी उसे स्मरण करो। तुम अपनी स्त्रीके साथ सुखभोग करनेके लिये मुझ समर्थ पुत्रको मारकर भावी पुत्रकी आशा करते हो, तुम्हारी बुद्धि कैसी हो गई है? पुत्रके वचन सुनकर पिताकी बुद्धि ठिकाने आगई। उसने खेद बताया व अपनी भूलको स्वीकार किया।

हे सखियो ! वह मूर्ख किसान तो समझ गया परन्तु हमारे स्वामी बड़े दुराग्रही हैं । इनको समझाना बड़ा कठिन है । हमारे स्वामी अज्ञानीके समान चेष्टा कर रहे हैं । वर्तमान स्वाधीन सम्पदाओंको छोड़कर आगेके लिये इच्छा करते हैं । आगे ऐसी संपत्ति मिले या न मिले सन्देहकी बात है ।

यद्यपि जंबूस्वामी विरक्त थे तौभी बड़े बुद्धिमान थे । इस कथाको सुनकर संबोधनेके लिये उसी तरह धर्म कथा कहने लगे जैसे कोई योगी कहता है । मैं भी आप सबको सम्यग्ज्ञान देनेवाली एक कथा कहता हूं, सो सब ध्यान देकर सुनो ।

जम्बूस्वामीकी कथा ।

विंध्याचलके महावनमें एक हाथी मर गया । वर्षा बहुत हुई इससे वह फिर नर्मदा नदीमें बहने लगा । उस हाथीके मांसको एक काग खारहा था सो उसके मस्तकपर बैठा हुआ ही मांसका लोभी नदीमें आगया । काक सहित हाथीका कलेवर बहते बहते समुद्रमें पहुंच गया । तब समुद्रके मच्छादि जलचर जंतुओंने उस हाथीके कलेवरको शीघ्र ही भक्षण कर लिया । तब काक उड़ा । महासमुद्रमें इधर उधर उड़ते उड़ते चारों तरफ देखता है, न कहीं ग्राम है न वृक्ष है न पर्वत है, कोई स्थान विश्रामके लिये न दीख पड़ा । जब तक शक्ति रही तबतक उड़ता रहा । फिर उस समुद्रमें गिर पड़ा । मुखसे कांओ कांओ करता हुआ वह बिचारा मर गया । जैसे इस मांस-लोलुपी काकको अकस्मात् विपत्ति आपड़ी, वैसे मैं

हे स्त्रियो ! वही विपत्तिमें पड़ना चाहता हूं। यदि मैं तुमसे संसग करके भोग भोगूं, और मोहसे कर्म बांधूँ–जब कर्मोंका उदय होगा और मैं भवसागरमें डूबूंगा तब मुझे कौन उद्धार करेगा ?

इस दृष्टांतसे पद्मश्रीकी कथाका खण्डन होगया।

कनकश्रीकी कथा।

तब कनकश्री कौतूहलसे पूर्ण कथा कहने लगी–रमणीक कैलाश पर एक बन्दर रहता था। एक दिन वह पर्वतकी चोटीपर चढ़ गया। यकायक वह गिर गया। शरीरके खण्ड खण्ड होगए। शांत भावसे अकाम निर्जरासे मरकर एक विद्याधरका पुत्र हुआ। एक दफे बड़ी आयु पानेपर विद्याधरने मुनि महाराजसे नमन करके अपना पूर्व भव पूछा। मुनि महाराजने अवधिज्ञान नेत्रसे देखकर कह दिया कि पूर्व जन्ममें तुम बन्दर थे। कैलाशसे गिरकर पुण्यके फलसे विद्याधर हुए हो। इस बातको सुनकर विद्याधरने कुमति ज्ञानसे यह मनमें निश्चय कर लिया कि जिस स्थानसे मरकर मैं कपिसे विद्याधर हुआ हूं, उसी स्थानसे गिरकर यदि मैं फिर मरूंगा तो अवश्य देव हो जाऊंगा। इसलिये मुझे अवश्य जाकर कैलाशके शिखरसे गिरकर मरना चाहिये। एक दिन विद्याधरने अपनी स्त्रीसे अपने मनकी बात कही कि हे प्रिये ! कैलाशके शिखरसे गिरकर मरनेसे स्वर्ग मोक्षके फल मिलते हैं, इससे मैं कैलाशसे पडूंगा। उसकी स्त्री सुनकर दीनमन हो दुःखित होकर रुदन करने लगी व कहने लगी–हे स्वामी ! आप बड़े बुद्धिमान

हैं, आप क्यों मरण चाहते हैं, आप तो विद्याधर हैं, आपको किस बातकी कमी है? उस मूर्खने स्त्रीकी बातपर ध्यान नहीं दिया— जाकर कैलाशके शिखरसे पड़ा तो आर्तध्यानसे मरकर फिर वही काल मुखका बन्दर पैदा होगया। हे सखियो! जैसे मूर्ख विद्याधरने स्वाधीन सम्पदाको छोड़कर मरण करके पशु पर्याय पाई वैसे हमारे स्वामीका व्यवहार है। महारमणीक सर्व संपदाओंको छोड़कर आगेकी वांछासे तप करने जाते हैं, फिर ये संपदाएं मिले वा न मिले, क्या भरोसा है।

जम्बूस्वामीकी कथा।

जम्बूस्वामी कनकश्रीकी कथाको सुनकर उसको उत्तर देनेके लिये एक कथा कहने लगे। विन्ध्याचल पर्वतपर एक बलवान कोई बंदर था। वह बड़ा कामी था। वह वनके बंदरोंको मार डालता था। ईर्षावान भी बहुत था। अपनी बंदरीसे जो बच्चे होते थे उनको भी मार डालता था। अकेला ही काम क्रीड़ा करते हुए तृप्त नहीं होता था। एक दफे उसीका एक बंदर पुत्र हुआ, वह उसके जाननेमें न आया। किसी तरह बच गया। जब वह पुत्र युवान हुआ, तब कामातुर होकर अपनी माताको स्त्री मानकर रमण करनेको उद्यत हुआ। तब उसके पिता बंदरने देख लिया और उसके मारनेको क्रोध करके दौड़ा। उस युवान बंदरने पिताको दांतोंसे व नाखूनोंसे काटा। दोनों पितापुत्र बहुत देरतक परस्पर नख व दांतोंसे काटकाटकर युद्ध करने लगे। घबड़ाकर बूढ़ा बंदर भाग निकला

तब युवान बंदरने उसका पीछा किया। जब वह बहुत दूर निकल गया तब युवान बंदर लौट आया। वृद्ध बंदरको बहुत प्यास लगी। वह पानी पीनेको कीच सहित पानीमें घुसा। मैले पानीको पी लिया। परन्तु कीचड़में ऐसा फंस गया कि निकल न सका। मूर्ख विषयवासनासे आतुर होता हुआ मर गया। हे प्रिये! मैं इस बंदरके समान इस संसारमें विषयोंके भीतर यदि फंस जाऊं तो मुझे कौन उद्धार करेगा? जंबूस्वामीके इस उत्तरके बलसे कनकश्री मुरझा गई, तब कथा कहनेमें चतुर तीसरी विनयश्री बोली—

विनयश्रीकी कथा।

एक कोई दरिद्री पुरुष था, जिसका नाम संख था। वह रोज सबेरे वनमें लकड़ी काटने जाया करता था। ईंधन लाकर विक्रय करके बड़े कष्टसे असाताके उदयसे पेट पालता था। एक दफे लकड़ीका दाम बाजारमें अधिक मिला। तब भोजनमें खर्च करनेके पीछे एक रुपया बच गया। तब अपनी स्त्रीके साथ सम्मति करके उस रुपयेको भूमिमें गाड़ दिया कि कभी आपत्ति पड़ेगी तो यह काम आयगा। कुछ दिन पीछे एक प्रवासी यात्री उसी वनमें आया। वहां उसने अपना रत्नोंका पिटारा गाड़ दिया और तीर्थ-यात्रादिके लिये चला गया। उस दलिद्री संखने उसे गाड़ते देख लिया था। जब वह प्रवासी चला गया तब संखने उस रत्नभांडको लोभसे दूसरी जगह गाड़ दिया। और मनमें विचारने लगा कि इसमेंसे जब चाहूंगा एक एक रत्न निकालता रहूंगा। घरमें आकर

अपनी स्त्रीसे सर्व हाल कहा कि पुण्यके उदयसे एक रत्नोंका पिटारा मुझे मिल गया। मैंने उसे यत्नपूर्वक गाड़ दिया है। हे प्रिये ! यह बात सच है, मैं झूठ नहीं कहता हूं।

इस बातको सुनकर स्त्रीको आश्चर्य हुआ, तो भी हर्षसे फूल गई। हे भद्र ! बहुत अच्छा हुआ, तुम चिरकालतक जीओ। मेरी सलाह और मानो। जो एक रुपया तुमने एकत्र किया है उसको भी उस रत्नभांडमें कुशलतासे धर दो। हम तुम दोनों अपना नित्य कर्म बराबर करते रहें। मोहके कारण स्त्रीके वचनोंको दरिद्रीने मान लिया कि तूने ठीक कहा-दरिद्रीने वैसा ही किया। दोनों ही जने वनसे काष्ठ ले जाते थे और विक्रय करके पेट भरते थे। कुछ दिनोंके बाद रत्नभांडका स्वामी पीछे उसी वनमें आया। अपने रत्नभांडको जहां रक्खा था वहां न पाकर इधर उधर भूमि खोदकर ढूंढ़ने लगा। बहुत देरके परिश्रमके बाद पुण्यके योगसे उसको वह रत्न पिटारा मिल गया। उसको लेकर वह आनन्दसे अपने घर चला गया। पुण्यके बलसे चंचला लक्ष्मी गई हुई भी सुखसे मिल जाती है। उस दरिद्रीने एक घड़ेके भीतर रत्न पिटारी रखकर रुपया रख दिया था। एक दिन वह वहां आकर खोदता है तो घड़ेको खाली पाता है। रत्न पिटारा भी गया व एक रुपया भी गया। वह मूर्ख हावभाव करके सिरको पीट पीटकर रोने लगा। हा ! रत्न पिटारेके साथ मेरा पहला संचय किया हुआ रुपया भी चला गया। हा ! पापके उदयसे मैं ठगा गया। मैंने प्राप्त धनको

न भोगमें लगाया न दानमें लगाया। जिसके स्वाधीन लक्ष्मी हो फिर भी वह उसका भोग न करे तो वह पीछे उसी तरह पछताएगा, जैसे संख दरिद्रीको पछताना पड़ा।

जम्बूस्वामीकी कथा।

विनयश्रीकी कथा सुनकर जम्बूस्वामीने फिर एक कथाके बहाने उत्तर दिया। लब्धदत्त नामका एक बनिया था। व्यापारके लिये बाहर गया था, सो मार्गमें एक भयानक वनमें आ पड़ा। पापके उदयसे उसके पीछे एक भयानक हाथी क्रोधित हो उसको मारनेको दौड़ा। उससे भयभीत होकर वह बनिया भागा और यकायक एक कूपके ऊपर वटवृक्षकी शाखा पकड़कर लटक गया। उस शाखाकी जड़को दो चूहे एक सफेद एक काले काट रहे थे। वणिक देखकर विचारने लगा कि क्या किया जाय। यह शाखा कटी कि कूपके भीतर अवश्य गिर जाऊँगा, शरीरके शतखण्ड हो जांयगे। ऐसा विचारते हुए नीचे देखा तो कूपमें एक बड़ा अजगर बैठा हुआ है, देखकर कांपने लगा। फिर देखा तो चारों कोनोंसे निकले हुए भयानक सांप कूपमें बैठे हैं। उस समय उस वणिकको जो संकट हुआ वह कहा नहीं जा सक्ता। हाथी क्रोधमें होकर उस वटवृक्षको अपने कंधेसे उखाड़नेका उद्यम करने लगा व ध्वनि करने लगा। जहां वह वणिक लटक रहा था उसके ऊपर एक मधु मक्खियोंका छत्ता था। यकायक मधुकी बूँद उस वणिकके मुखमें आपड़ी। उस बूँदके स्वादसे वह बड़ा राजी होगया।

इतनेहीमें एक विद्याधर आकाश मार्गसे जारहे थे उसने वणिकको कूपके ऊपर लटकते देखकर वह विमानसे उतरा और बोला—हे मूढ़! मैं विद्याधर हूँ, मैं तुझे निकाल सक्ता हूँ। मेरी भुजाको पकड़, तू निकल जा, संकटसे बच जा। सुनकर वह मधुके रसके स्वादका लोलुपी कहने लगा—थोड़ी देर ठहर जाओ, जबतक एक मधुकी बूँद मेरे मुखमें और न आजावे। दयावान विद्याधरने फिर भी कहा कि रे मूढ़! तेरा मरण निकट है, बिंदु मात्रके लोभसे कूपमें प्राण न गमा। तू हलाहल विष खाकर जीना चाहता है सो ठीक नहीं है। मेरी भुजा पकड़, देर न कर। इस तरह बहुत बार समझाया परन्तु वह रसना इन्द्रियके लोभवश नहीं समझा। विद्याधरने उसे मूर्ख समझा और वह अपने मार्गसे चला गया। थोड़ी देरमें मूषकोंके द्वारा शाखा कटनेसे वह कूपमें गिर पड़ा और अजगरने उसे भक्षण कर लिया। जिस तरह लब्धदत्त वणिक मधु-बिंदुके लोभसे काल ग्रसित हुआ वैसे मैं इस तुच्छ विषयसुखके लिये महा भयानक कालके मुखमें प्रवेश करना नहीं चाहता हूं।

विनयश्री स्वामीसे वचन सुनकर मूढ़तारहित होगई।

अब चौथी स्त्री रूपश्री कथा कहने लगी—

नियश्रीकी कथा।

एक दफे मनोहर वर्षाकाल आगया। मेघ छा गए। पानीकी वर्षासे तलैया तलाव भर गए, बिजली चमकने लगी। मार्गोंमें कीचड़से आना जाना कठिन होगया। दिनमें अन्धकार छागया।

ऐसे समयमें एक कृकलास (किरला) भूखी होकर अपने विलसे निकली। वह घूमती थी। उसने एक काले भयानक दंदशूक सर्पको देखा। ऐसे भयानक कालस्वरूप सर्पको देखकर वह भयसे चिंतातुर हो भागी और नदीमें एक नकुलके बिलमें चली गई। वह सर्प भी उसीके पीछे पीछे उसी बिलमें घुस गया। वहां सर्पने उसको तो छोड़ दिया। और बिलके भीतर बहुत उसका कुटुम्ब मिलेगा उसको पकडूंगा इस आशासे चला गया। नकुलोंने सर्पको देखकर क्षुधासे आतुर हो उसे मारडाला और खा लिया।

जैसे उस सर्पकी दशा हुई वैसे हमारे स्वामी विवेक रहित हैं जो सामने पड़ी लक्ष्मीको छोड़कर आगेकी आशा करके पथभ्रष्ट हो रहे हैं। रूपश्रीकी कथा सुनकर जम्बूकुमार उसे समझानेके लिये एक सुंदर कथा कहने लगे—

जम्बूकुमारकी कथा।

इस पृथ्वीपर एक शृगाल था। रातको वह नगरके भीतर गया, वहां एक बूढे बैलको मरा हुआ देखकर प्रसन्न होगया कि अब मेरे मनका मनोरथ सिद्ध होगा, वह शृगाल उस बैलके हाड़पिंजरके भीतर घुस गया। मांसको खाते खाते तृप्त नहीं हुआ। इतनेमें रात चली गई। सबेरा होगया तब नगरके लोगोंने उस शृगालको देख लिया, वह उस अस्थिके पंजरसे निकलकर भाग न सका, चित्तमें व्याकुल होगया कि आज मेरा मरण अवश्य होगा। इतनेमें किसी नागरिकने शृगालके दोनों कान व उसकी पूंछ किसी औषधि बनानेके

लिये काट ली। फिर वह विचारने लगा कि इसतरह भी जीता बचे तो ठीक है, अभी तो कुछ बिगड़ा नहीं है। इतनेमें किसीने पत्थर लेकर उसके दांत तोड़कर निकाल लिये कि इनसे घर जाकर वशीकरण मंत्र सिद्ध करूंगा। तब भी शृगाल विचारने लगा कि इसी तरह जान बचे तो वनमें भाग जाऊं। इतनेमें कुत्तोंने आकर क्षणमात्रमें मार डाला। रसना इन्द्रियके वश वह शृगाल जैसे मारा गया व कुत्तोंसे खाया गया वैसे मैं विषयोंके मोहमें अंधा होकर नष्ट होना नहीं चाहता हूं। कौन बुद्धिमान जान बूझकर कुमार्गमें पड़ेगा। यदि मैं इन्द्रियोंके विषयोंके वशमें निर्बल होकर फंस जाऊं तो फिर मेरा कौन उद्धार करेगा? हे प्रिये! तुम्हारे वचन परीक्षा में उचित नहीं बैठते हैं।

इसतरह उन चारों महिलाओंकी नाना प्रकारकी वार्तालापोंसे महात्मा कुमारका मन किंचित् भी शिथिल नहीं हुआ।

विद्युच्चरका आगमन।

इधर कुमारके साथ स्त्रियां वार्तालाप कर रही थीं, उधर उस रात्रिको विद्युच्चर नामका एक चोर कामलता वेश्याके घरसे चोरी करनेको निकला। कोतवालसे अपनी रक्षा करता हुआ वह चोर उस रातको अर्हद्दास सेठके घर चोरी करनेको आया। जहां कुमारका शयनालय था वहांपर आगया। कुमारका अपनी स्त्रियोंसे जो वार्तालाप होरहा था उसको सुनकर विचारने लगा कि पहले इस कौतुकको देखूं कि रत्नोंको चुराऊं? सुननेकी दृढ़ आकांक्षा होगई।

यही निश्चय कर लिया कि पहले सब सुनना चाहिये फिर धनको चुराऊंगा। वह ध्यानसे उनकी वार्ताको सुनने लगा। वर व कन्याओंकी कथाओंको सुनकर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। सोचने लगा कि कुमारके धैर्यकी महिमा कौन कह सक्ता है। इन वधुओंने किंचित् भी कुमारके मनको नहीं डिगाया। उधर जंबूकुमारकी माता घबड़ाई हुई मकानमें इधर उधर फिर रही थी। बारबार कुमारके शयनालयके द्वारपर आकर देखती थी कि इन स्त्रियोंके मोहमें कुमार आया कि नहीं।

यकायक भीतके पास खड़े हुए चोरको देखकर भयभीत हो बोली—यह कौन है? तब विद्युच्चरने कहा कि माता! घबड़ा नहीं, मैं प्रसिद्ध विद्युच्चर नामका चोर हूं। मैं तेरे नगरमें नित्य चोरी किया करता हूं। अबतक मैंने बहुतोंका धन चुराया है। तेरे घरसे भी सुवर्णरत्न चुराये हैं। और क्या कहूं। इसीलिये आज भी आया हूं। कुमारकी माता कहने लगी—हे वत्स! तुझे जो चाहिये सो मेरे घरसे ले जा। तब विद्युच्चरने जिनमतीसे कहा—हे माता! मुझे आज धन लेनेकी चिंता नहीं है, किंतु मैं बहुत देरसे यह अपूर्व कौतुक देख रहा हूं कि युवती स्त्रियोंके कटाक्षोंसे इस युवानका मन किंचित् भी विचलित नहीं हुआ है। हे माता! इसका कारण क्या है सो कह। अब तू मेरी धर्मकी बहन है, मैं तेरा भाई हूं। तब जिनमती धैर्य धारकर कहने लगी—एक ही मेरा यह कुलदीपक पुत्र है। मैंने मोहसे इसका आज विवाह कर दिया है। परन्तु यह

विरक्त है व तप लेना चाहता है। सूर्यके उदय होते ही वह नियमसे तप ग्रहण करेगा, इसमें कोई संशय नहीं है। उसके वियोगरूपी कुठारसे मेरे मनके सैकड़ों खंड होरहे हैं। इसीलिये मैं घबड़ाई हुई हूं और वारबार इस घरके द्वारपर आकर देखती हूं कि कदाचित् पुत्रका संगम अपनी वधुओंके साथ होजावे।

जिनमतीके वचन सुनकर विद्युच्चरके मनमें दया पैदा होगई, कहने लगा—हे माता! मैंने सब हाल जान लिया। तू भय न कर, मुझसे इस कार्यमें जो हो सकेगा मैं करूंगा। तू मुझे जिस तरह बने कुमारके पास शीघ्र पहुंचा दे। मैं मोहन, स्तंभन, वशीकरण मंत्र तंत्र सब जानता हूं। उन सबसे मैं प्रयत्न करूंगा। आज यदि मैं तेरे पुत्रका संगम वधुओंसे न करा सकूंगा तो मेरी यह प्रतिज्ञा है, जो उसकी गति होगी वह मेरी गति होगी। ऐसी प्रतिज्ञा करके यह विद्युच्चर बाहर खड़ा रहा। माताने धीरे२ द्वार खटखटाया। हाथकी अंगुलीसे द्वारपर थपकी दी, परन्तु लज्जावश मुखसे कुछ नहीं बोली। कुमारने शीघ्र किवाड़ खोल दिये। कुमारने नमन किया, माताने आशीर्वाद दिया।

तब जंबूकुमारने विनयसे पूछा—हे माता! यहां इस समय आनेका क्या कारण है? तब जिनमती कहने लगी कि जब तुम गर्भमें थे तब मेरा भाई—तुम्हारा मामा वाणिज्यके लिये परदेश गया था। आज वह तेरे विवाहका उत्सव सुनकर यहां आया है—तुम्हारे दर्शनकी बड़ी इच्छा है, वह बहुत दूरसे पधारा है। जिनमतीके वचन

सुनकर कुमारने कहा कि मेरे मामाको शीघ्र यहां बुलाओ। पुत्रकी आज्ञा होनेपर माता शीघ्र विद्युच्चरको जंबूकुमारके पास ले गई। जम्बुकुमार मामाको देखकर पलंगसे उठे और आदर सहित स्नेह पूर्ण हो गले मिले। स्वामीने पूछा-इतने दिन कहां २ गए थे, मार्गमें सब कुशल रही ना?

सुनकर विद्युच्चरने भानजेकी बुद्धिसे कहा कि हे सौम्य! सुन, मैंने इतने दिन कहां कहां व्यापार किया।

दक्षिण दिशामें समुद्र तक गया हूं चंदनके वृक्षोंसे पूर्ण ऊंचे मलयागिर पर, सिंहलद्वीपमें (वर्तमान सीलोन) केरलदेशमें, मंदिरोंसे पूर्ण व जैनोंसे भरे हुए द्राविड़देश (तामीलमें), चीणमें, कर्णाटकमें, काम्बोजमें, अति मनोहर कांकीपुरमें, कौंतलदेशमें होकर उन्नत सह्य पर्वतके वहां आया। फिर महाराष्ट्र देशमें गया। वहांसे अनेक वनोंसे शोभित वैदर्भदेश बरारमें गया। फिर नर्मदा नदीके तटपर विंध्य पर्वतके वहां पहुंचा। विंध्याचलके वनोंको लांघकर आगे आहीर देशमें, चउलदेशमें, भृगुकच्छ (भरोंच)के तटपर आया। वहां धवल सेठका पुत्र श्रीपाल राजा राज्य करता है। कोंकणनगरमें होकर किष्किंध्य नगरमें आया। इत्यादि बहुतसे नगर देखे, फिर पश्चिममें जाकर सौराष्ट्र देश (काठियावाड़) देखा। श्री गिरनार पर्वत पर आया। श्री नेमिनाथ तीर्थंकरके पंचकल्याणकोंके स्थान व वह स्थान देखा जहां श्री नेमनाथने राजीमतीको छोड़कर तप किया था। इसी गिरनार पर्वतसे यदुवंश शिरोमणि नेमनाथ मोक्ष प्राप्त हुए हैं।

भिल्लमाल विशाल देशमें गया। अर्बुदाचल (आबू) पर प्राप्त हुआ। महा रमणीक संपत्ति पूर्ण लाट देशको देखा। चित्रकूट पर्वत होकर मालवादेशमें गया। इस अवंतीदेशके जिन मंदिरोंकी महिमा क्या वर्णन करूं। फिर उत्तर दिशामें गया। शाकंभरी पुरी गया, जो जिन मंदिरोंसे पूर्ण है व मुनियोंसे शोभित है। काश्मीर, करहार, सिंधुदेश आदिमें होकर मैं व्यापार करता हुआ पूर्वदेशमें आया। कनौज, गौड़देश, अंग, बंग, कलिंग, जालंधर, बनारस व कामरूप (आसाम)को देखा। जो जो मैंने देखा मैं कहांतक कहूं।

इस तरह परम विवेकी जंबूकुमार स्वामी जगतपूज्य जयवंत हो जो विरक्तचित्त हो पर पदार्थके ग्रहणसे उदास हो स्त्रियोंके मध्यमें बैठे चोरकी बात सुन रहे हैं।

दशवां अध्याय।

जंबूस्वामी विद्युच्चर वार्तालाप।

(श्लोक १५९ का सारांश।)

मोहरूपी महायोद्धाको जीतनेवाले मल्लिनाथकी तथा सुव्रतोंको बतानेवाले मुनिसुव्रत तीर्थंकरकी स्तुति करता हूं।

विद्युच्चरका समझाना व कथा कहना।

अब विद्युच्चर मामाके रूपमें श्री जंबूकुमार स्वामीको कोमल वचनोंसे समझाता हुआ कहने लगा–हे कुमार! तुम बड़े भाग्यवान हो, ऐश्वर्यवान हो, कामदेवके समान तुम्हारा रूप है। वज्रधारी इन्द्रके समान बलवान हो, चंद्रमाकी किरण समान यशस्वी व शांत हो, मेरु पर्वतके समान धीरवीर हो, समुद्रके समान गंभीर हो, सूर्यके समान तेजस्वी हो, कमलपत्रके समान नम्र स्वभावधारी हो, शरणागतकी रक्षा करनेको बलवान हो। जो जगतमें दुर्लभ भोग सामग्री है सो पूर्व बांधे हुए पुण्यके उदयसे तुमने प्राप्त की है। किन्हीं को दुर्लभ वस्तु मिल जाती है, परन्तु वे भोग नहीं कर सक्के हैं, जैसे भोजन सामने होनेपर भी रोगी खा नहीं सक्का। किसीको भोजनकी शक्ति तो है, परन्तु भोगादि सामग्री नहीं मिलती है। जिसके पास मनोज्ञ भोग सामग्री भी हो व भोगनेकी शक्ति भी हो, फिर भी वह भोग न करे तो उसको यही कहा जायगा कि वह दैवसे

ठगा गया है। जैसे किसीके पास स्त्रियां हों, परन्तु उसके काम-भोगका उत्साह न हो। या किसीको काम-भोगका उत्साह हो, परन्तु स्त्रियां न हों। किसीको दान करनेका उत्साह तो है परन्तु घरमें द्रव्य नहीं है। किसीके घरमें द्रव्य है परन्तु दान करनेका उत्साह नहीं है। दोनों बातोंको पुण्यके उदयसे पाकर जो नहीं भोगता है उसे मूर्ख ही कहना चाहिये। मूर्ख मानव खरगोशके सींगको व बंध्याके पुत्रको मारना चाहता है सो उसकी मूर्खता है। जिसके लिये चतुर पुरुष तप करनेका उद्यम करते हैं। वह सब सर्वांग पूर्ण सुख तेरे सामने उपस्थित है, उसको छोड़कर और अधिककी इच्छासे जो तुम तप करना चाहते हो सो यह तुम्हारा विचार उचित नहीं है। दृष्टांतरूपमें मैं एक कथा कहता हूं। सो हे भागिनेय ! ध्यानसे सुन—

एक युवान ऊंट था, वह वनमें इच्छानुसार बहुतसे वृक्षोंको खाता फिरता था। एक दिन वह एक वृक्षके पास आया जो कूपके पास था। उसके पत्तोंको गलेको ऊँचा करके खाने लगा। उसके स्वादिष्ट पत्तोंको खाते खाते उसके मुखमें एक मधुकी बूंद पड़ गई। मधुके रसका स्वादका लोभी हो वह विचारने लगा कि इस वृक्षकी सबसे ऊँची शाखाको पकड़नेसे बहुत अधिक मधुका लाभ होगा। मधुका प्यासा होकर ऊपरकी शाखापर बारबार गलेको उठाने लगा तो पग उठ गए, यकायक वह बिचारा कूपमें गिर पड़ा। उसके सब अङ्ग टूट गए। जैसे महा लोभके कारण इस ऊँटकी दशा

हुई, वैसे ही तुम्हारी दशा होगी, जो तुम अज्ञानसे मोहित होकर प्राप्त संपदाको छोड़कर आगेके भोगोंके कामके लिये तप करना चाहते हो।

जम्बूस्वामीकी कथा।

तब जम्बूस्वामी कहने लगे कि हे मामा! आपके कथनके उत्तरमें मेरी कथा भी सुनो—

एक वणिक पुत्र घरके कार्यमें लीन था। एक दिन व्यापारके लिये स्वयं परदेश गया। मार्ग भूलकर वह एक भयानक वनमें फंस गया। प्यास भी बहुत लगी। पानी न पाकर पश्चाताप करने लगा कि मैं घरसे वृथा ही आकर इस वनके भीतर फंस गया। यदि जल न मिला तो प्याससे मेरा मरण अवश्य होजायगा। ऐसा विचार करते हुए बैठा था कि चोरोंने आकर उसका माल लूट लिया। धनकी हानिके शोकसे व प्याससे पीड़ित होकर वह एक पग भी चल न सका। एक वृक्षके नीचे सोगया, वहां सोते हुए उसने एक स्वप्न देखा कि वनमें एक सरोवर है, उसका पानी मैं पीरहा हूं, जिह्वासे पानीका स्वाद लेरहा हूं। इतनेमें जाग उठा तो देखता है कि न कहीं सरोवर है, न कहीं जल है। हे मामा! स्वप्नके समान सब सम्पदाओंको जानो। यकायक मरण आता है, सब छूट जाता है। ऐसे स्वप्नके समान क्षणभंगुर भोगोंमें महान् पुरुषोंका स्नेह कैसे होसक्ता है?

विद्युच्चरकी कथा।

कुमारकी कथाको सुनकर वास्तवमें वह उसी तरह निरुत्तर होगया जैसे एकांत मतवादी स्याद्वादीके सामने निरुत्तर होजाते हैं। फिर भी वह विद्युच्चर दूसरी कथा कहकर उद्यम करने लगा।

एक कोई वृद्ध बनिया था, वह अपनी स्त्रीसे प्रेम करता था परन्तु उसकी स्त्री नवयौवन व्यभिचारिणी व दुष्टा थी। एक दिन वह घरसे सुवर्णादि लेकर निकल गई। वह काम-लंपटी इच्छानुसार भोगोंमें रत होना चाहती थी। जाते हुए किसी धूर्त ठगने देख लिया, देखकर उसको मीठे वचनोंसे रिझाने लगा।

हे सुंदरी! तुझे देखकर मेरे मनमें स्नेह पैदा होगया है कि न जाने क्या कारण है। जन्मांतरका तेरे साथ स्नेह है ऐसा विदित होता है। वह कहने लगी कि यदि तेरे मनमें मेरी तरफ प्रेम है तो आजसे तुमही मेरे भर्तार हो, दूसरा नहीं है। इस तरह परस्पर स्नेहवान हो वे पति पत्नीके समान रहने लगे, इच्छानुसार कामक्रीडा करने लगे। इस तरह दोनोंका बहुतसा काल बीत गया। एक दिन वह दूसरे कामी पुरुषके साथ स्नेहवती होगई, वह निर्लज्ज घृणा रहित माया व मिथ्या भावसे भरी हुई कामभावसे जलती हुई दोनोंहीके साथ रतिकर्म करने लगी। वास्तवमें स्त्रियोंके मनमें कुछ और होता है, वचन कुछ कहती हैं। पण्डितोंको कभी भी स्त्रियोंका विश्वास न करना चाहिये।

एक दिन दुष्टबुद्धिधारी प्रथम जार पुरुष दूसरे पुरुषका आना

जानकर विचारने लगा कि किसीतरह स्त्रीसे उसका पिंड छुड़ाना चाहिये।

उसने जाकर कोतवालसे कहा—कि रात्रिको कोई आकर मेरी स्त्रीके साथ रमण करता है, उसे रात्रिको आकर पकड़ ले तो तुझे सुवर्णका लाभ होगा। ऐसा कह कर वह घर आगया। रात्रि होने पर पहला पति जागता हुआ ही सो गया कि मैं इस स्त्रीके खोटे चारित्रको देखूं। इतनेमें रात्रिको दूसरा जार पति आगया तब वह व्यभिचारिणी पहले पतिके पाससे उठ कर दूसरेके पास चली गई। जब वह दूसरा जार कामातुर हो स्त्रीभोग करनेको ही था कि कोतवाल उसके पकडनेको आगया। कोलाहल होने पर वह दुष्टा पहले जारके साथ आके सोगई। रुद्र स्वभावधारी सिपाहियोंने कहा कि यहां वह जार चोर कहां है। इतनेमें दूसरा जारपति बोल उठा कि मैं तो निन्द्रामें था, मैं नहीं जानता हूं। इधर उधर देखते हुए व स्त्रीके साथ पूर्वपतिको देखकर पूर्वपतिको पकड़ लिया कि यही वह जार है, तथा यही वह स्त्री है। जिसने पकड़ाना चाहा था वही पकड़ा गया। सिपाहियोंने मारते मारते बड़ी निर्दयतासे उसे कोतवालीमें पहुंचाया।

इस बातको देखकर वह स्त्री डरी, कदाचित् मुझे भी सिपाही पकड़ लें। इसलिये उसने भागना निश्चय किया तब उसने दूसरे जारको समझा दिया कि हम दोनों मिलकर यहांसे निकल चलें। उस स्त्रीने घरके वस्त्राभूषणादि बहुमूल्य वस्तु ले ली और जारके साथ घरसे निकली।

मार्गमें गहरी नदी मिली। तब वह दूसरा जार मायाचारसे

ठगनेके लिये बोला कि हे प्रिये ! वस्त्राभूषणादि सब मुझे दे दे, मैं पहले पार जाकर एक स्थानमें इनको रखकर पीछे आकर तुझे अपने कंधे पर चढ़ाकर भले प्रकार पार उतार दूंगा। स्वयं वह धूर्त थी ही, उसने उस धूर्तका विश्वास कर लिया। उसने पति जानकर अपने सब गहने कपड़े उतार कर दे दिये। आप नग्न होकर इस तटपर बैठी रही। वह दुष्ट ठग नदी पार करके लौट कर नहीं आया। यह अकेली यहां बैठी रही, तब स्त्रीने कहा—हे धूर्त ! तू लौट कर आ। मुझे छोड़कर चला गया? उस ठगने कहा कि तू बड़ी पापिनी है। वहीं बैठी रह। इतनेमें एक शृगाल आगया। जिसके मुखमें मांसपिंड था, पूछ ऊंची थी। उस शृगालने पानीमें उछलते हुए एक मछलीको देखा। तब वह अपने मुखके मांसको पटककर महा लोभसे मछलीके पकड़नेको दौडा। इतनेमें वह खूब गहरे पानीमें चला गया, तब वह लोभी स्यार उसी मांसको लेकर दूसरे वनमें भाग गया, वह स्त्री ऐसा देखकर हंसी कि स्यारको मछली नहीं मिली। उसने विना विचारे काम किया। स्वाधीन मांसको छोडकर पराधीन मांस लेनेकी इच्छा की। वह धूर्त चोर भी दूसरे पारसे कहने लगा—हे मूर्खे ! तूने क्या किया, तू अपनेको देख। यह पशु तो अज्ञानी है, हित अहितको नहीं जानता है, तू कैसी अज्ञानी है कि अपने पतिको मारकर दूसरेके साथ रति करने लगी।

इतना कहकर वह धूर्त ठग अपने घर चला गया तब वह स्त्री लज्जाके मारे नीचा मुख करके बैठ रही।

हे भागिनेय ! तुम अपने पासकी लक्ष्मीको छोड़कर आगेकी इच्छाको करके मत जाओ नहीं तो हास्यके पात्र होगे।

जम्बूकुमारकी कथा।

तब फिर जंबूकुमार अपने दांतोंकी कांतिको चमकाते हुए कहने लगे—

एक व्यापारी जहाजका काम करता था। एक दिन जहाज-पर चढ़कर वह दूसरे द्वीपमें गया। वहां सर्व माल बेचकर एक रत्न खरीद लिया। तब वह बनिया अपने घरको लौटा। मार्गमें अपने हाथमें रतन रखकर व बारबार देखकर यह विचारने लगा। समुद्रतट पहुंचकर मैं इस महान् रत्नको बेच डालूंगा और हाथी घोड़े आदि नाना प्रकारकी वस्तु खरीदूंगा, फिर राजाके समान होकर अपने नगरको जाऊंगा। लक्ष्मीसे पूर्ण हो मंत्री व नौकर चाकर रखूंगा। मैं घरमें रह कर स्त्रीके साथ सुखसे जीवन बिताऊंगा। मुसकराते हुए स्त्रियोंको देखूंगा। पुत्र पौत्रादि होंगे उनको देख कर प्रसन्न हूंगा। ऐसा मनमें विचारता जारहा था कि पापके उदयसे व प्रमादसे वह रतन हाथसे समुद्रमें गिर पड़ा, तब उसके मनके सब मनोरथ वृथा रह गए। रतन न दीखने पर हाहाकार करके रोने लगा।

हे मामा ! मैं इस तरह नहीं हूंगा कि धर्मके फलको छोड़कर वर्तमान विषयभोगोंमें फंस कर दुःख भोगूं।

स्वामीके इस उत्तरको सुनकर वह चोर निरुत्तर होगया तथापि वह एक और कथा कहने लगा, जैसे मृदंगको मारनेसे वह ध्वनि निकालता ही है।

विद्युच्चरकी कथा।

एक धनुषधारी शिकारी भील विंध्याचल पर्वत पर रहता था। उसका नाम दृढ प्रहारी था। उसने एक दिन एक वनके हाथीको जो सरोवरमें प्यासा होकर पानी पीने आया था जानसे मार डाला। पापके उदयसे उसी क्षण एक सर्पने भीलको डंस दिया, भील भी मर गया। वह सांप भी धनुषके लगनेसे घायल होकर मर गया। वहां हाथी, भील और सांप तीनों मृतक पड़े थे, इतनेमें एक भूखा स्यार वहां आगया। वहां पर हाथी, भील, सांप व धनुषको पडा हुआ देखकर लोभके कारण बहुत हर्षित हुआ। वह स्यार मनमें विचारने लगा कि इस मरे हुए हाथीको छः मासतक निश्चिंत हो खाऊँगा। उसके पीछे एक मासतक इस मनुष्यका शरीर भक्षण करूँगा। उसके पीछे सांपको एक दिनमें खा जाऊंगा। इन सबको छोड़कर आज तो मैं इस धनुषकी तांतीको ही खाता हूं। उसमें बाण लगा था वह बाण उसके तालूमें घुस गया। पापके उदयसे वह डोरी खाते हुए बहुत कष्टसे मरा।

हे कुमार! जैसे बहुत सुखकी इच्छा करनेसे स्यारका मरण होगया वैसे तुम इस सांसारिक वर्तमानके सुखको छोड़कर अधिक सुखके लिये घरको छोड़ जाओगे तो हास्यको पाओगे।

जम्बुकुमार मामाकी कथाको सुनकर उत्तर देनेके लिये एक रमणीक कथा कहने लगे—

जम्बूस्वामीकी कथा।

एक अति दरिद्री मजदूर था जो वनसे ईंधन लाकर व बेचकर पेट भरता था। एक दिन वनसे कंधेपर भारी बोझा लाया था। दोपहरको उस भारको मस्तकसे रखकर अपने घरमें ठहरा। वह बिचारा बहुत प्यासा था। तालू सूख गए थे। बोझा लानेका भी कष्ट था। भार रखकर एक वृक्षके नीचे शांतिको पाकर क्षण मात्रके लिये सो गया। नींदमें उस मजदूरने स्वप्न देखा कि वह राज्यपदपर विराजित है। मणि मोतीसे जड़े हुए सिंहासनपर बैठा है। बारबार चमर ढर रहे हैं। बन्दीजन विरद बखान रहे हैं। हाथी, घोड़े आदि बहुत परिवार हैं। फिर देखा कि राजमहलमें बैठा है। चारों तरफ स्त्रियां बैठी हैं। उनके साथ हास्य-विनोद होरहा है। इतनेहीमें उसकी भूखसे पीड़ित स्त्रीने लकड़ीसे व पैरोंसे ताडकर उसको जगाया। यकायक उठा। उठकर विचारने लगा कि वह राज्यलक्ष्मी कहां चली गई! देखते देखते क्षण मात्रमें नाश होगई!

हे मामा! इसी तरह स्त्री आदिका संयोग सब स्वप्नके समान क्षणमात्रमें छूटनेवाला है व इनका संयोग प्राणीके प्राणोंका अप-हरण करनेवाला है। ऐसा समझकर कौन बुद्धिमान दुःखोंके स्थानमें अपनेको पटकेगा।

विद्युच्चरकी कथा।

जंबूस्वामीकी कथा सुनकर बुद्धिमान विद्युच्चर चौथी कथा कहने लगा। रात्रिका अंतिम प्रहर हो चला था। एक कोई नट था जो बड़ा चतुर व कलाविज्ञानका जाननेवाला था। बड़ा विख्यात था। उसका नाम कुतूहली था। एक दिन राजाके सामने बड़ी चतुराईसे नृत्य दिखाया, साथमें कई नृत्यकारिणी भी आभूषण पहरे नाच रहीं थीं। नृत्यको देखकर राजा बहुत प्रसन्न हुआ। इनाममें सुवर्णादि व वस्त्रादि दिये। राजाके दिये हुए प्रसादको पाकर वे सब नट निद्राके वशीभूत होकर वहीं सोगए। रात्रिको जागकर जा नहीं सके। नर्तकी आदि सब गाढ़ नींदमें सोगए। तब प्रधान नट पाप बुद्धिसे जागता ही रहा और मनमें विचारने लगा कि मैं इन सबको यहीं छोड़कर सर्व सुवर्णादि लेकर क्षणमें भाग जाऊं। जैसे वह सर्व द्रव्य लेकर भागने लगा वैसे ही सब नर्तकी जाग पड़ीं और उस प्रधान नटको चोरीके अपराधमें राजाके पास लेगईं। राजाने देखकर क्रोध किया व उचित दंड दिया।

वैसे ही हे भागिनेय जंबूस्वामी! तुम तो बहुत बुद्धिमान हो, बहुत द्रव्यके लाभके लिये इस सम्पदाको छोड कर मत जाओ, पीछे पछताना पड़ेगा।

इस कथाको सुनकर प्रभावशाली जंबूकुमार इस कथाके उत्तरमें एक रमणीक कथा कहने लगे—

जम्बूस्वामीकी कथा।

बनारस नगरमें एक महान राजा प्रसिद्ध लोकपाल नामका था जो राज्यका भार सहन करनेमें चतुर था। उसकी पटरानी महासुन्दर मनोरमा नामकी थी। एक दिन राजा बनमें शिकार खेलनेके लिये गया था तब उसकी रानीके परिणाम कामभावसे पीड़ित होगए। उसने एक चतुर दूतीको बुलाकर अपने मनका हाल कह दिया कि हे माता! मैं कामकी बाधा सहनेको असमर्थ हूं, तू ही मेरी रक्षा करनेवाली है, तू शीघ्र किसी सुन्दर तरुण पुरुषको यहां ला। वह महापापिनी दूती कहने लगी—हे सुंदरी! तू शोच न कर, मेरे होते तेरी इच्छा पूर्ण होगी। मैं अपनी बातोंसे कामभावसे विरक्त योगियोंको भी मोहित कर सक्ती हूं तो दूसरे साधारण कामसे पीड़ित मानव कीटोंकी तो बात ही क्या है। वह रानी अपने महल पर बैठी हुई मार्गमें देख रही थी। उसने एक चंग नामके सुनारको जाते देखा, देखकर उस पर मोहित होगई। दूतीको कहा कि मेरे जीवनके लिये इस पुरुषको किसी उपायसे बुलालो। दूती गई व अपनी मायासे उस चंगको मनोरमाके पास ले आई। जैसे ही वह रानी उस पुरुषको लेकर अपने कमरेमें गई व रतिक्रीड़ाके लिये शय्यापर बैठी थी कि इतनेमें राजा हाथीपर चढ़े हुए आगए। राजाको आते देखकर सुनार घबड़ाकर भयभीत हो कांपने लगा। रानीने एक छिपे हुए गहरे गढेमें उस चंगको छिपा दिया और आप राजाके सामने जाकर उसे स्नेह सहित घरमें लाई। वह चंग छः माहतक उसी गढ्ढेमें

वास करता रहा व मनोरमाके साथ कामभोग करता रहा। मनोरमा झूठन फेंकनेके बहानेसे उसको भोजन पहुंचा देती थी। छः मास वहां रहनेसे उसके शरीरमें कोढ़का रोग होगया। एक दफे राजाकी आज्ञासे उस गहरे गड्ढेको पानीसे धोया जाने लगा। तब वह उसकी मोरीसे बाहर निकलकर भागकर नदीके किनारे पर आया। जब उसके जानकार लोगोंने पूछा कि तुम्हारा शरीर तो सुवर्णके ही समान था, ऐसा कोढ़ी कैसे होगया? उसने बात बनाकर कह दी कि मेरी सुंदरताको देखकर पाताल लोककी कन्याएं (देवियां) मुझे बड़े आदरसे लेगईं। जब मैं अपने घर लौटने लगा तब उन दुष्टाओंने क्रोध करके मेरे शरीरको बिगाड़ दिया। लोग स्वभावसे ही सत्य नहीं बोलते हैं तो जब कोई कारण हो तब न बोले तो क्या आश्चर्य? यही दशा सुनारकी हुई, वह धीरे २ अपने घरमें आया। वहां पैसोंके द्वारा सुगंध द्रव्योंसे उवटन किये जानेपर वह सुन्दर-शरीर फिर होगया। एक दफे वह किसी कामसे मार्गमें जारहा था, वह राजमहलके पास पहुंचा तब उसे उसी मनोरमाने देख लिया और संकेतसे उसे बुलाने लगी। तब चंगने कहा—हे दुष्टा! तेरे साथ अब स्नेह नहीं करना है, तेरे घरसे जो दुःख पाया है उसे मैं एक क्षण भी भूल नहीं सकता हूं। अभी भी मेरे शरीरसे दुर्गंध नहीं निकलती है। अब मैं कष्टसे छूटा हूं, फिर मैं इस विचार रहित कामको नहीं करूंगा।

इसी तरह हे मामा! मैं इस तुच्छ इन्द्रिय सुखके लिये

तिर्यंच आदि गतियोंमें जाकर दुःख उठाना नहीं चाहता हूं। बहुत प्रलापसे क्या ? आप ठीक समझलो, मैं कदापि इन्द्रिय सुखका भोग नहीं चाहता हूं। चाहे आप सैकड़ों कथाओंसे मेरा समाधान करो।

विद्युच्चरचोरने निश्चय कर लिया कि कुमारका मन दृढ़ है। यह भी स्वयं निकट भव्य था, स्वयं वैराग्यवान होगया। और कुमारकी दृढ़ताकी प्रशंसा करने लगा—हे स्वामी ! आप बड़े बुद्धिमान हैं, आप तीन लोकमें धन्य हैं। आप देवोंसे भी पूज्य हैं, मेरी क्या बात, हे महामतिमान् ! आप संसार-समुद्रसे पार होगये हैं। आप धर्मरूपी कल्पवृक्षके मूल हैं। आप अवश्य कर्मरूपी पर्वतोंके मेटनेवाले हैं। इस प्रकार बहुत स्तुति करके विद्युच्चरने अपना सर्व वर्णन चोरी आदि करनेका सच्चा २ कह दिया। इतनेमें सूर्योदयका समय होगया। दिशाएं लाल वर्णकी होगईं। मानो उस समय जंबूकुमारके भीतरका राग ही निकलकर आकाशमें छागया। इस समय कितने ही सम्यग्दृष्टी भव्यजीव बड़े आदरसे कायोत्सर्ग करते हुए ध्यानमें लीन होगये। कितने ही श्री जिनेन्द्रकी पूजा करनेका उद्यम करने लगे। जल, चंदन, धूपादि सामग्री एकत्र करने लगे, इतने हीमें उदयाचलसे सूर्यका उदय होगया, मानो यह सूर्य अपनी किरणोंको फैलाकर स्वामीका दर्शन ही कर रहा है। जिस धर्मके प्रसादसे महापुरुष अविनाशी सुख भोगते हैं या इन्द्र व चक्रवर्तीका सुख भोगते हैं, उस धर्मका सेवन धर्मात्माओंको करते रहना चाहिये।

अध्याय ग्यारहवां।

श्री जम्बूस्वामी निर्वाण।

(श्लोक १५० का भावार्थ।)

पञ्चकल्याणकके भागी नव इन्द्रादि देवोंसे नमस्कृत श्री नमि-तीर्थकरको तथा जगतके गुरु व धर्मरूपी रथकी धुर के समान श्री नेमिनाथ तीर्थंकरको नमन करता हूं।

जम्बूस्वामीकी दीक्षा।

सवेरा होते ही अर्हदास सेठके घरमें क्या हुआ सो कहता हूं—

श्री जंबूस्वामीके वृत्तान्तको राजा श्रेणिकने नहीं सुना था, इसलिये सबेरे ही अर्हदास सेठ सर्व हाल कहनेको स्वयं राजमहलमें गया। राजा श्रेणिकने सर्व हाल सुना। क्षणभर विचारमें पड़ा फिर जंबूस्वामीके वैराग्यसे आनन्दपूर्ण हो राजा धर्मबुद्धिवश सेठके स्नेहवश अर्हदासके घर चला। राजाकी आज्ञासे दुंदुभि बाजे बजने लगे, ये बाजे इस विजयके सूचक थे जैसे कि श्री जंबुकुमारको केवलज्ञानके साम्राज्यकी प्राप्ति होगी। जिसतरह तीर्थंकरोंके कल्याणकोंमें देवगण आकाशमार्गमें आते हैं वैसे श्रेणिकराजा मृदंगादि बाजोंकी ध्वनिके साथ बड़े उत्साहसे सेठके घर स्नेहसे पूर्ण कुटुंब सहित श्री जंबुकुमारके चरणकमलकी वन्दनाको आया। राजा श्रेणिकने स्वामीके विकार रहित नेत्रोंसे व मुखादिकी चेष्टासे जान लिया कि स्वामी वैराग्यमें आरूढ़ वीर योद्धाके समान हैं। यद्यपि स्वामी

वैरागी थे तथापि अपनी भावशुद्धिके लिये प्रभावनाके अर्थ स्वामीको नवीन वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत किया। चंदनादिसे अंगको चर्चा, मस्तकपर मुकुट रक्खा। जैसे इन्द्र सुमेरु पर्वतपर जिनेन्द्र तीर्थंकरको लेजाता है वैसे राजाने दीक्षावनमें जंबुकुमारको लेजानेकी शोभा की। स्वामी ऐसे शोभने लगे मानो मुक्तिरूपी कन्याके स्वयंवरके लिये तय्यार हुए हैं। फिर कुमारकी अनुमति पाकर राजा और सेठने अपने हाथोंसे स्वामीको पालकीमें स्थापित किया। जिस समय स्वामी वनमें जानेको तपके लिये तय्यार हुए, सर्व नागरिक दर्शन करनेको आदरपूर्वक आए, जनसमुदाय अपने २ घरका काम छोड़कर ऐसा दौड़ा मानो किसी अदृष्टको देखनेके कौतुकसे आरहे हैं। सर्व नगरके लोग परस्पर कहने लगे—"धन्य हैं स्वामी जो चारों स्त्रियोंको छोड़कर सिद्धिके सुखकी अभिलाषासे दीक्षित होने जारहे हैं, राजघरानेमें भी हाहाकार होगया। कितने ही दुःखित होकर स्नेहके भारसे मूर्छित होगए। इसी मध्यमें सती जिनमती माता आंसू निकालती व गद्गद् वचन बोलती आई—हे पुत्र! क्षणभर अपनी माताकी तरफ देख। ऐसा दीन वचन कहती हुई मोहसे मूर्छा खाकर गिर पड़ी, चेष्टा रहित होगई। अपनी सासको मूर्छित देखकर चारों वधुएं महा मोहसे व शोकसे पूर्ण हो वाणी निकालती हुई रुदन करने लगीं।

हे नाथ! हे प्राणनाथ! हे कामदेव! हम अनाथ होरहे हैं। हमें छोड़ क्यों जारहे हैं? दैवको धिक्कार हो जिसने तपके लिये

आपकी बुद्धि बना दी है। दैवने हमारे महादुःखको देखते हुए भी करुणा नहीं की।

हे कृपानाथ ! अब भी प्रसन्न हो, परिणाम कोमल करो। नानाप्रकार भोगोंको भोगो। हे नाथ ! हम तुम्हारे बिना दीन हो, कैसे शोभाको पायेंगी, जैसे चंद्रमाके बिना रात्रि शोभाको नहीं पाती है। वे स्त्रियां दीन वचन कह रही थीं। उधर चंदनादि पदार्थ छिडक कर जिनमती माताको होशमें लाया गया। सावधान होकर फिर सती जिनमती माता खेदसे वीर वैराग्यमें आरूढ़ स्वामीसे कहने लगी—हे पुत्र ! कहां तेरा केलेके पत्तेके समान कोमल शरीर और कहां खड्गकी धाराके समान जैनका कठिन तप ? यदि कोई हाथके अंगूठेसे अग्निको जलावे तो उसके मस्तकपर पहुंच ही जाती है। उससे भी कठिन काम तप है। हे बालक ! तू दुःखदाई भूमिशयन कैसे करेगा ? बाहुको लम्बायमान करके तू रातको कायोत्सर्ग ध्यान कैसे करेगा ? अपने वृद्ध माता पिताको दुःखी छोड़कर तू वनमें क्यों जाता है ? तेरे विना ये चारों बधूएं दुःखी होंगी व अकेली उसी तरह शोभा नहीं पायेगी जैसे भाव शून्य क्रिया शोभाको नहीं पाती है। कहा है—

इमा बध्वश्चतस्रोऽपि त्वामृते दुःखपूरिताः।
एकाकिन्यो न शोभंते भावशून्याः क्रिया इव ॥२०॥

इस तरह बहुत प्रकारसे विलाप करती हुई माताको देखकर दृढ़ संकल्पधारी जम्बूस्वामी कहने लगे—हे माता ! शीघ्र ही शोकको

छोड़, कायरपना त्याग। इस संसारकी अवस्था सब अनित्य है, ऐसी मनमें निरन्तर भावना कर। हे माता! मैंने इन्द्रियोंके विषयोंका सुख बहुतबार भोग करके झूठनके समान छोड़ा है। ऐसे अतृप्तिकारी सुखकी हमें इच्छा नहीं करनी चाहिये।

यह प्राणी स्वर्गोंके महाभोगोंसे भी तृप्त न भया तो यह स्वप्नके समान मध्यलोकके तुच्छ भोगोंसे कैसे तृप्त होगा? मैं न मालूम कितनी वार नारकी, देव, तिर्यंच तथा मनुष्य हुआ हूं। कहा है—

कति न कति न वारान् भूपतिर्भूरिभूतिः।
कति न कति न वारानत्र जातोऽस्मि कीटः॥
नियतमिति न कस्याप्यस्ति सौख्यं न दुःखं।
जगति तरलरूपे किं मुदा किं शुचा वा।

भावार्थ- मैं कितने ही दफे बड़ी विभूति सहित राजा हुआ हूं। कितने ही दफे मैं कीट हुआ हूं। इस चंचल संसारमें किसी भी प्राणीको न कभी निश्चलतासे सुख होता है न दुःख होता है। इसलिये सुखमें हर्ष व दुःखमें शोक करना वृथा है।

इत्यादि अमृतमई उचित वाक्योंसे माताको संबोध करके जम्बूस्वामी शीघ्र ही घरसे निकले। घरसे विमुख होकर वनकी ओर जाते हुए स्वामी ऐसे शोभते थे जैसे बन्धन तुड़ाकर स्वच्छन्द महा गजराज शीघ्र वनको जाता हुआ शोभता है। जम्बूकुमारको जाते हुए सर्व ही निकट भव्यजीव स्तुति करने लगे। देखो! राज्य समान लक्ष्मीको तृणके समान मानके कुमार जारहे हैं। इस तरह आनन्द-

सहित श्रेणिक आदि राजा स्वयं पालकीको कंधोंपर व हाथों हाथ लेते हुए वनकी तरफ पहुंचे।

यह वन अकालमें ही फलफूलोंसे भरा हुआ था, बड़ा ही सुगंधित था, पवनके योगसे शाखाओंके अग्रभाग हिल रहे थे। मानो स्वामीके आनेपर हर्षसे नृत्य कर रहे हैं। पालकीसे उतरकर जंबूकुमार सौधर्म आचार्यके निकट गए। तीन प्रदक्षणा देकर नमस्कार किया।

फिर मुनि महाराजके सामने योग्य स्थानपर खड़े होगए। फिर कुमारने दोनों हाथजोड़ मस्तक नमाकर बड़े आदरसे विनयकी कि दयासागर! यथार्थ चारित्रवान मैं नानाप्रकारके हजारों दुःखोंसे भरी हुई कुयोनिरूपी संसारसमुद्रके आवर्तोमें डूब रहा हूं। मेरा उद्धार इस भवसागरसे कीजिये। आज मुझे कृपा करके संसार-हरण करनेवाली पवित्र, उपादेय, कर्मक्षय समर्थ मुनिदीक्षा प्रदान कीजिये। आचार्यने आज्ञा दे दी। आज्ञा पाकर विरक्तचित्त स्वामी जम्बूकुमारने गुरु महाराजके सामने अपने शरीरसे सर्व आभूषण उतार दिये। अपने मुकुटके आगे लटकनेवाली फूलोंकी माला इस तरह दूर करदी, मानो कामदेवके बाणोंको ही बलपूर्वक दूर किया हो। रत्नमई मुकुट भी शीघ्र ही उतारा। मानो मोहरूपी राजाके सर्व मानको ही जीत लिया है। फिर हार आदि गहनोंको उतारा। रत्नमई अंगूठियें उंगलीसे दूर कीं। फिर अपने शरीरसे सुन्दरताके समान वस्त्रोंको उतार दिया। मानो चतुर पुरुषने मायाके पटलोंको ही फेंक दिया हो। मणियोंसे वेष्टित पड़े हुए कमरकी करधनीको

इस तरह तोड़ डाला, मानो संसारसे वैरागीने संसारका दृढ़ बन्धन ही तोड़ डाला। फिर कानोंके दोनों कुण्डल निकाल दिये, मानो संसाररूपी रथके दोनों पहियोंको ही तोड़ डाला।

फिर स्वामीने दोनों हाथोंसे शास्त्रकी पद्धतिसे लीला मात्रमें पांच मुष्टिसे अपने केशोंका लोंच कर डाला। उस समय ॐ नमः मंत्र उच्चारण किया। फिर श्री गुरुकी आज्ञासे क्रमसे शुद्ध अट्ठाईस मूलगुणोंको ग्रहण किया। वे २८ मूलगुण नीचे प्रकार हैं—

२८ मूलगुण।

५ महाव्रत—अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, परिग्रह त्याग।

५ समिति—ईर्या (भूमि निरखकर चलना), भाषा (शुद्ध वाणी कहना), एषणा (शुद्ध आहार लेना), आदान निक्षेपण (देखकर रखना उठाना), प्रतिष्ठापन—(मलमूत्र निर्जंतु भूमि पर करना।)

५ इंद्रिय निरोध-स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु, कर्ण, इनके विषयोंकी इच्छाओंको रोकना।

६ आवश्यक क्रिया—नित्य छः काम अवश्य करना—सामायिक, प्रतिक्रमण (गत दोषका पश्चात्ताप), प्रत्याख्यान (आगे दोष न लगानेकी प्रतिज्ञा), स्तुति (२४ तीर्थंकर स्तवन), वंदना (किसी एक तीर्थंकरकी वन्दना), कायोत्सर्ग (ममत्व त्याग)।

७ फुटकर नियम—

(१) केशोंका लोंच, (२) अचेलकपना—(वस्त्र त्याग, यह शुद्ध चारित्रका कारण है), (३) स्नान त्याग—(अहिंसा महाव्र-

तके लिये स्नान न करना), (४) प्राशुक भूमिमें शयन–(वैराग्यादिकी वृद्धिके लिये), (५) काष्ठादिसे दंतवन त्याग–(वैरागियोंको दांतोंकी शोभाकी आवश्यक्ता नहीं है), (६) स्थिति भोजन–(कायोत्सर्गसे खड़े होकर भिक्षा लेना), (७) एकवार भोजन–(दिवसमें एकवार भोजन शरीरकी स्थितिके लिये हाथमें लेना, भोगोंके लिये कदापि न लेना ।)

२८ मूल गुण—

श्री जिनेन्द्रोंने ये अट्ठाईस मूल गुण साधुओंके लिये बताए हैं । इन्हींके उत्तर भेद (सूक्ष्म भेद) चौरासीलाख हैं ।

इन सब नियमोंको मोक्षके चाहनेवाले साधुओंको मरण पर्यंत पालना चाहिये । इन सबके समूहका नाम मुनिका चारित्र है ।

गुणोंमें गम्भीर व श्रेष्ठ गुरुसे मुनिका चारित्र सुनकर शुद्ध बुद्धिधारी जंबूकुमारने सर्व व्रत व नियम ग्रहण कर लिये । जिस समय स्वामीने नग्न होकर मुनिव्रत धारण किये उस समय श्रेणिक आदि सर्व राजाओंने व सर्व नगरवासियोंने आनन्दभावसे जय जय शब्द किये । उस समय कितने ही शुद्ध सम्यक्तके धारी राजाओंने भी यथाजात दिगम्बर स्वरूप धारण करके मुनिपद स्वीकार किया । कोई चारित्र मोहके उदयसे मुनिका चारित्र पालनेको असमर्थ थे उन्होंने श्रावकके व्रतोंको बड़े आदरसे ग्रहण किया ।

विद्युच्चर मुनि ।

विद्युच्चर चोर भी संसार शरीर भोगोंसे वैरागी होगया था ।

उसने भी सर्व परिग्रहका त्याग कर मुनिव्रत ग्रहण किया। विद्युच्चरके साथ प्रभव आदि पांचसौ राजकुमार चोरी करते थे वे सब ही पांचसौ मुनि होगए।

जम्बूकुमार परिवार दीक्षा।

फिर अर्हदास श्रेष्ठी भी वैराग्यवान होगये। स्त्री सहित सर्व घरके परिग्रहको छोड़कर मुनिराज होगये। जिनमती माता भी संसारको असार जानकर सुप्रभा आर्यिकाके समीप आर्यिकाके व्रतोंसे विभूषित होगई। पद्मश्री आदि चारों युवती स्त्रियोंने भी संसारकी क्षणिक अवस्था जानकर सुप्रभा गुराणीके पास आर्यिकाके व्रत धारण कर लिये।

फिर श्रेणिक आदि राजाओंने सौधर्म आदि सर्व मुनीश्वरोंको नमस्कार करके अपने घरकी ओर जानेका उद्यम किया।

जम्बूस्वामी सम्यक्चारित्रसे विभूषित हो अपनेको कृतार्थ मानने लगे। उपवास ग्रहणकर मौन सहित वनमें ध्यानमें लीन होगए। विद्युच्चर आदि मुनियोंने भी यथाशक्ति उपवास ग्रहण किया और सब ध्यानमें तन्मय होगए। उपवास पूर्ण होनेपर समाधिके अन्तमें महामुनि जंबूस्वामीने सिद्ध भक्ति पढ़ी, फिर पारणाके लिये प्राशुक मार्गमें ईर्या समितिसे चलने लगे।

जम्बूस्वामीका प्रथम आहार।

संयमी जम्बूकुमारने राजगृह नगरमें प्रवेश किया। नगरवासियोंने दूरसे देखा कि कोई पवित्रात्मा पुण्य मूर्ति आरहे हैं।

सर्वजन देखते ही दूरसे विनय सहित नतमस्तक हो नमस्कार करने लगे। कितने ही लोग चित्रके समान दर्शन करके आश्चर्य सहित परस्पर कहने लगे—जो पूर्वमें सबसे मुख्य थे वे ही आज मुनीश्वर होगये हैं।

अहो! दैवका विचित्र माहात्म्य है। कर्मोंके उदयसे कौन जानता है क्या किस तरह भावी है? कितने ही श्रावक दान देनेके उत्सुक मार्गमें स्वामीके प्रतिग्रहण करनेके लिये अलग अलग खड़े हुये राह देख रहे थे। कोई कहने लगे-स्वामी! यहां कृपा करो, अपने चरणकमलकी रजसे मेरा घर पवित्र करो। हे जंबूस्वामी! महामुनि हमारे घरमें तिष्ठो तिष्ठो, शुद्धप्राशुक अन्न है, हम भक्तिपूर्वक देना चाहते हैं, आप ग्रहण करो। श्रावकजन बारबार कह रहे हैं—स्वामी! पधारिये, हमारे घरमें पधारिये। कितने ही कहने लगे-स्वामीका शरीर कामदेवके समान है, वय छोटी है, सुकुमार शरीर है, कठिन तप किस तरह करेंगे? कितने ही वन्दनाके बहाने कामदेवके समान रूपवान निष्काम स्वामीको देखनेके लिये सामने आगये। इसतरह श्रावकके जन नानाप्रकारकी बातें कह रहे थे। इतनेमें स्वामी बिना किसी चिंताके जिनदास सेठके घरपर खड़े होगये। जिनदासने स्वामीको पड़गाहा। स्वामीने मन, वचन, काय, कृत, कारित, अनुमोदनासे नवकोटि शुद्ध आहार ग्रहण किया। तब सेठके आंगनमें दानके अतिशयसे पुष्पवृष्टि आदि पांच आश्चर्य हुए। आहार लेकर शुद्धात्मा स्वामी सांसारिक वांछासे रहित होकर भी दयाके भावसे

भूमि निरख कर वनकी ओर चल पड़े। ईर्यापथ शुद्धिसे चल करके धीरे २ जंबू मुनि वनमें श्री सौधर्माचार्यके निकट आये। महान् तेजस्वी जम्बू मुनिको एक निर्वाण लाभकी ही भावना थी, इसीलिये तपकी सिद्धि करना चाहते थे।

कुछ सालके पीछे सौधर्म आचार्यको स्वाभाविक केवलज्ञानका लाभ होगया। अनंत स्वभावधारी सर्वज्ञ केवलीके चरणोंमें रहकर जंबुस्वामी महामुनिने कठिन कठिन तपका साधन किया।

जम्बूस्वामीका तप।

स्वामी बारह प्रकारका तप करने लगे। आत्माकी विशुद्धिके लिये एक दो आदि दिनोंकी संख्यासे उपवास करते थे। शांतभाव धारी एक ग्रास दो ग्रास आदि लेकर भी महान् अवमोदर्य तप करते थे। लोभ रहित स्वामी यथा अवसर भिक्षाको जाते हुए घरोंकी संख्या कर लेते थे। इसतरह वृत्तिसंख्यान तीसरा तप साधन करते थे।

इन्द्रियोंको जीतनेके लिये व काम विकारकी शांतिके लिये रस त्याग नामके चौथे तपको करते थे। आत्मवशी जंबु मुनिराज वन पर्वत आदि शून्य स्थानोंमें बैठकर विविक्त शय्यासन नामका पांचमा तप किया करते थे। महान् उपसर्गको जीतनेके लिये शस्त्रके समान कायक्लेश नामके छठे तपको करते थे। श्री जंबूस्वामी परम धैर्यके एक महान् पद थे, महान् वीर्यधारी थे, छः प्रकारके बाहरी तपको सहजमें ही साधन करते थे।

इसीतरह स्वामीने छः प्रकारका अंतरङ्ग तप साधन किया।

मन वचन काय सम्बन्धी कोई दोषकी शुद्धिके लिये प्रथम प्रायश्चित्त तपको स्वीकार किया। निश्चयरत्नत्रयरूपी शुद्धात्मीक धर्ममें तथा अरहंत आदि पांच परमेष्ठियोंमें विनय तपको करते थे। मुनिराजोंको नमस्कार व उनकी सेवाको नहीं उल्लंघन करते हुए तीसरा सुखदाई वैय्यावृत्य तप पालन किया करते थे। शुद्धात्माके अनुभवका अभ्यास करते हुए निश्चय स्वाध्यायरूपी चौथे परम तपका साधन करते थे। शरीरादि परिग्रहमें ममत्व भावको बिल्कुल दूर करके स्वामीने पांचमा व्युत्सर्ग तप साधन किया। सबसे श्रेष्ठ तप ध्यान है। सर्व चितासे रहित होकर चैतन्य भावका ही आलम्बन करके स्वामीने छठा ध्यान तपका आराधन किया। ये छः अंतरङ्ग शुद्ध तप मोक्षके कारण हैं। वैराग्यभावधारी स्वामीने दोष रहित इन सबोंको पाला। यथाजात स्वरूपके धारी मन, वचन, कायको निरोध करके तीन गुप्तियोंको पालते थे। स्वामीने कषायरूपी शत्रुओंकी सेनाको जीतनेके लिये कमर कस ली। शांतभावरूपी शस्त्रको लेकर उन कषायोंका सामना करने लगे। कामदेवकी स्त्री रतिको तो स्वामीने पहिले ही दूरसे ही भस्म कर दिया था। अब कामदेवरूपी योद्धाको लीला मात्रमें जीत लिया। द्रव्य व भाव श्रुतके भेदसे नाना प्रकार अर्थसे भरी हुई द्वादशांग वाणीके बुद्धिमान जम्बू मुनि पार पहुंच गए थे।

सौधर्माचार्यका निर्वाण।

इस तरह जब जंबूस्वामीको अनेक प्रकार तप करते हुए

अठारह वर्ष एक क्षणके समान बीत गए थे, तब माघ सुदी सप्तमीके दिन सौधर्मस्वामी विपुलाचल पर्वतसे निर्वाण प्राप्त हुए। तब सौधर्म-स्वामीका आत्मा अनंत सुखके समुद्रमें मग्न होगया। वे अनंत बल, अनंत दर्शन, अनंत ज्ञानके धारी निरंतर शोभने लगे। अपने कल्याणके लिये मैं उनको नमस्कार करता हूं।

जम्बूस्वामीको केवलज्ञान।

इसी दिन जब आधा पहर दिन बाकी था तब श्री जंबूस्वामी मुनिराजको केवलज्ञान उत्पन्न होगया। पहले उन्होंने मोह–शत्रुका क्षय किया। फिर ज्ञानावरण, दर्शनावरण व अंतराय कर्मका क्षय कर लिया। वे अनन्त चतुष्टयके धारी अरहंत होगए। पद्मासनसे विराजित थे, तब ही केवलज्ञान लाभकी पूजा करनेके लिये देव-गण अपने परिवार सहित व अपनी विभूति सहित बड़े उत्साहसे आगये। इन्द्रादिदेवोंने स्वामीको तीन प्रदक्षिणा देकर नमस्कार किया जय जय शब्दोंका उच्चारण किया, तथा बड़े हर्षसे प्रभुकी भक्तिपूर्वक अष्टद्रव्यसे पूजा की। इन्द्रोंने अनुपम गद्य पद्य गर्भित स्तुति पढ़ी। उस स्तुतिमें यह कहा–प्रचण्ड कामदेवके दर्परूपी सर्पको नाश करनेके लिये आप गरुड़ हैं, आपकी जय हो। केवल-ज्ञान सूर्यसे तीन लोकको प्रकाश करनेवाले प्रभुकी जय हो। इसप्रकार अंतिम केवली जिनवरकी अनेक प्रकारके स्तोत्रोंसे स्तुति करके अपनेको कृतार्थ मानते हुए देवादि सब अपनेर स्थानपर गये।

विपुलाचलसे जम्बूस्वामीका निर्वाण।

पश्चात् श्री जंबूस्वामी जिनेन्द्रने गंधकूटीमें स्थित हो उपदेश किया। स्वामीने मगधसे लेकर मथुरा तक व अन्य भी देशोंमें अठारह वर्ष पर्यन्त धर्मोपदेश देते हुए विहार किया। फिर केवली महाराज विपुलाचल पर्वतपर पधारे। आठों कर्मोंसे रहित होकर निर्वाणको प्राप्त हुए। नित्य अविनाशी सुखके भोक्ता होगये।

पश्चात् अर्हदास मुनीश्वर भी समाधिमरण करके छट्ठे देवलोक पधारे। श्रीमती जिनमती आर्यिकाने स्त्रीलिंग छेद दिया और उत्तम समाधिमरण करके ब्रह्मोत्तर नामके छठे स्वर्गमें इन्द्रपद पाया। चारों वधूएं आर्यिका पदमें चंपापुरके श्री वासुपूज्य चैत्यालयमें थीं। वहां प्राण त्यागकर महर्द्धिक देवी हुईं।

विद्युच्चर मुनि मथुरामें।

विद्युच्चर नामके महामुनि तप करते हुए ग्यारह अंगके पाठी होगए। विहार करते हुए पांचसौ मुनियोंके साथ एक दफे मथुराके महान वनमें पधारे। वनमें ध्यानके लिये बैठे कि सूर्य अस्त होगया। मानो सूर्य मुनियोंपर होनेवाले घोर उपसर्गको देखनेको असमर्थ होगया। उसी समय चंद्रमारी नामकी वनदेवीने मुनियोंसे निवेदन किया कि यहां आजसे पांच दिन तक आपको नहीं ठहरना चाहिये। यहां भूत प्रेतादि आकर आपको बाधा करेंगे, आप सहन नहीं कर सकेंगे। इसलिये आप सब इस स्थानको छोड़कर अन्य स्थानमें विहार कर जाओ। ज्ञानियोंको उचित है कि संयम व

ध्यानकी सिद्धिके लिये अशुभ निमित्तोंको छोड़ दें। ऐसा कहकर चंद्रमारी देवी अपने स्थानको चली गई। मुनियोंके भावोंकी परीक्षा लेनेको विद्युचर मुनिराजने कहा कि आप सब वृद्ध हो, विचारशील हो, हठ न करके प्रमाद त्याग करके यहांसे अन्य स्थानको चले जाओ। ऐसा सुनकर सर्व मुनि जो निःशंकित अंगके पालनेवाले थे निःशंक हो बोले–परमागममें योगीको आज्ञा है कि उपसर्ग पड़े तो सहन करे, अब रात्रिका समय है। जो हमारे शुभ व अशुभ कर्मके उदयसे होना होगा सो होगा, हम तो अब यहीं मौन साधकर बैठेंगे। उनके वचनोंको सुनकर विद्युचर मुनिको संतोष हुआ। धैर्यवान विद्युचर भी सर्व मुनियोंके साथ मौन लेकर योग मुद्रामें लीन होगये।

घोर उपसर्ग।

रात्रि बढ़ गई। अंधेरा चारों तरफ छागया। मुख देखना असमर्थ होगया, आधी रातका समय आगया, तब ही भूत, प्रेत, राक्षस भयानकरूप बनाकर इधर उधर दौड़ते हुए आये। कितने डांस, मच्छर होकर काटने लगे, कितने दंदशुक सर्पके समान होकर फूंकार करने लगे, कितने तीक्ष्ण नख व चोंचधारी मुरगे बन गये व सताने लगे, कितने हीने रक्तसे मस्तक व हाथ रंग लिये, निर्धूम अग्निके समान भयानक मुख बना लिये, कण्ठमें हड्डियोंकी मालाएं बांधलीं, लाल आंख करली, मुखको फाड़ते हुए आए। कितने हीने हाथोंसे मस्तकके बालोंको छिटका लिया, छातीमें रुण्डमाल डालली, हंसने लगे, हसको मारो ऐसा भयानक शब्द करने लगे। कोई

निर्दयी आकाशमें खड़े हुए दूसरोंको प्रेरणा करने लगे। इस तरह पाप कार्यमें रत राक्षसोंने जैसा मुनियोंपर उपसर्ग किया उसका कथन नहीं होसक्ता है। तब महाधीरवीर विद्युच्चर मुनिने अपने मनमें शुद्ध बारह भावनाओंका चिंतवन किया।

जीवनकी आशा छोड़कर शरीरको क्षणभंगुर जानकर बड़े भावसे सन्यास धारण कर लिया। ध्यानमें स्थिर होगए। व उसी तरह अन्य पांचसौ मुनियोंने भी संसारके स्वरूपको विचारकर शांतिसे उपसर्ग सहन किया। कितने स्वरूपके मननमें, कितने ही निश्चल ध्यानमें मेरु पर्वतके समान स्थिर होगये। वे सब ज्ञानी थे, कर्मके विपाकको जानते थे। कहा है—

धर्मः सर्वसुखाकरो हितकरो धर्मं बुधाश्चिन्वते।
धर्मेणैव समाप्यते शिवसुखं धर्माय तस्मै नमः॥
धर्मान्नास्ति परः सुहृद्भवभृतां धर्मस्य मूलं दया।
तस्मिन् श्रीजिनधर्मशर्मनिरतैर्धर्मे मतिर्धार्यताम्॥१९०॥

भावार्थ—सर्वसुखका करनेवाला धर्म है, धर्म हितकारी है, बुद्धिमान धर्मका संग्रह करते हैं, धर्मसे ही मोक्ष—सुख प्राप्त होता है। इसलिये यह धर्म नमस्कार करने योग्य है। संसारी प्राणियोंका धर्मसे बढ़कर कोई और मित्र नहीं है। धर्मका मूल अहिंसा धर्म है। जो जिन धर्मके सुखमें लीन होना चाहते हैं उनको ऐसे धर्ममें सदा प्रेमभाव धारना चाहिये।

बारहवा अध्याय।

विद्युच्चर मुनिको सर्वार्थसिद्धि।

(श्लोक १७७ का भावार्थ)

अन्तराय कर्मोंको नाश करनेवाले श्री पार्श्वनाथ भगवानको तथा आत्मीक गुणोंमें वर्द्धमान श्री वर्द्धमान भगवानको मैं नमस्कार करता हूं।

उपसर्ग जब पड़ रहा था तब विद्युच्चरादि सर्व मुनि बारह भावनाओंकी भावना इस तरह करने लगे। उनके नाम हैं—(१) अनित्य, (२) अशरण, (३) संसार, (४) एकत्व, (५) अन्यत्व, (६) अशुचित्व, (७) आस्रव, (८) संवर, (९) निर्जरा, (१०) लोक, (११) बोधिदुर्लभ, (१२) धर्म। जितने संयमी मुनि मोक्ष गये हैं, जारहे हैं व जांयगे, वे सब इन बारह भावनाओंको भाकर गये हैं, जारहे हैं व जांयगे।

अनित्य भावना।

इस लोकमें चर अचर जितने पदार्थ दीखते हैं वे सब विभाव रूपमें दीखते हैं। जितने स्थावर व त्रस जीव हैं वे कर्मोंके उदयसे विभाव पर्यायमें हैं। जबतक कर्मबीजका फल रहता है तबतक वे रहते हैं। जब उनका निर्माण कर्मफलसे है तब वे नित्य कैसे होसक्ते हैं? कर्मोंके उदयसे जितनी शरीरादि बाहरी व रागादि अंतरङ्ग पर्यायें होती हैं वे सब क्षणभंगुर हैं।

स्वानुभूतिके द्वारा अपना आत्मा इन सर्व कर्मजनित दशाओंसे

भिन्न है, ये सर्व कर्मोदयसे होनेवाली अवस्थाएं अनित्य हैं। यह बात प्रमाणसे, शास्त्रसें, आगमसे तथा स्वानुभूतिसे व प्रत्यक्षसे भी सिद्ध है। इनमें उत्तम बुद्धिधारी मानव कैसे मोह कर सक्ते हैं? जैसे सूर्यका उदय कुछ काल तक ही लगातार रहता है वैसे ही चारों गतियोंमें सर्व जीव किसी कालकी मर्यादाको लेकर उत्पन्न होते हैं। जैसे पका हुआ फल वृक्षसे अलग हो अवश्य भूमिपर गिर पड़ता है वैसे संसारी प्राणी आयुके क्षयसे अवश्य मर जाते हैं। इस लोकमें प्राणीका जीवन जलके बुद्‌बुदके समान चंचल है, भोग रोग सहित हैं, युवानी जरा सहित है, सुन्दरता क्षणमें बिगड़ जाती है, सम्पत्तियां विपत्तिमें बदल जाती हैं, नाशवन्त हैं, सांसारिक सुख मधुकी बूंदके स्वादके समान है, परम्परा दुःखका कारण है। इंद्रियोंका बल, आरोग्य व शरीरका बल सब मेघोंके पटलके समान विनाश होनेवाला है, राज्यमहल व राज्यलक्ष्मी इन्द्रजालके समान चली जानेवाली है। पुत्र, पौत्र, स्त्री आदि, मित्र, बन्धुजन, सज्जनादि सब बिजलीके चमत्कारके समान चंचल हैं। देखते देखते क्षणमात्रमें नाश होजाते हैं। इस तरह सर्व जगतकी रचनाको अनित्य जानकर सतपुरुषोंको शरीर आदिमें ममता नहीं करनी चाहिये। अपने आत्माको नित्य सनातन अनुभव करना योग्य है।

अशरण भावना।

इस चार गति रूप संसारमें भ्रमण करते हुए प्राणीको जब मरणरूपी शत्रु पकड़ लेता है तब कोई भी शरण नहीं है। जैसे बनमें

मृगके बच्चेको जब बाघ पकड़ लेता है तब पुण्यके उदय विना कोई और रक्षा नहीं कर सक्ता। आयुक क्षय होनेपर अणिमा आदि शक्तियोंक धारी देवोंको भी स्वर्गसे च्युत होना पड़ता है तो अन्य शरीरधारियोंकी क्या बात ? जब यमराज विकराल मुख करके सामने आजाता है तब मणि, मंत्र, औषधि आदि सर्व ही निरर्थक होजाते हैं। जब यमराज क्रोधित होकर इन्द्र, चक्रवर्ती व विद्याधरोंको पकड़ लेता है तब कोई भी बचा नहीं सक्ता। इस जगतमें कोई अपनी आत्माका रक्षक नहीं है। यदि कोई रक्षक है तो वह एक जिन शासन है, इसीको ग्रहण योग्य मानकर बड़े पुरुषार्थसे उस जिनधर्मका साधन करना चाहिये। अर्हन्त भगवान शरण हैं, सिद्ध महाराज शरण हैं, साधु महाराज शरण हैं, अरहंत भाषित धर्म शरण है। बुद्धिमानोंको उचित है कि इन चारोंको ही सर्वदा अपना रक्षक माने। जगतमें एक धर्मको ही रक्षक मानकर बुद्धिमानोंका कर्तव्य है कि व्यवहारनयसे चारित्ररूप धर्मको पालें, निश्चयसे आत्मानुभव रूप धर्मको साधें।

संसार भावना।

द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव भावरूप भ्रमणकी अपेक्षा यह संसार पांच प्रकार है। सूक्ष्म ज्ञानियोंने द्रव्य संसारको दो प्रकारका कहा है। कर्म योग्य पुद्गलोंक ग्रहणकी अपेक्षा कर्म द्रव्य परिवर्तन व नोकर्म पुद्गलोंके ग्रहणकी अपेक्षा नोकर्म द्रव्य परिवर्तन इस लोकमें तीन प्रकार पुद्गल स्वभावसे हैं—गृहीत, अगृहीत और मिश्र। किसी

विवक्षित जीवने तीनों ही प्रकारके पुद्गलोंको अनंतवार कर्म तथा नोकर्म रूपसे ग्रहण किया है, बारबार ग्रहण कर छोड़ा है, फिर ग्रहण किया है, जितना काल इसतरह ग्रहणमें लगता है सो द्रव्यसंसार है। ऐसा द्रव्य परिवर्तन इस संसारी जीवने पूर्व अनंतवार किया है।

(नोट–इसका विस्तारसे स्पष्ट कथन गोम्मटसारसे जानना योग्य है।)

आकाशका क्षेत्र जो लोकमें है वह अणुमात्र ही प्रदेशरूप भावसे असंख्यातप्रदेशी है। इस जीवने हरएक प्रदेशमें जन्म व मरण किया है। सुमेरु पर्वतके नीचे लोकाकाशके मध्यमें आठ प्रदेश गोस्तनाकार प्रसिद्ध हैं। कोई जीव उन प्रदेशोंको मध्य देकर वहां जन्मा, आयु भोगकरके मरा, फिर वह कहीं उत्पन्न हुआ सो गिनतीमें न लेकर वहीं फिर एक प्रदेश उल्लंघ करके जन्मे। इसतरह सर्व आकाशके प्रदेशोंको जन्म लेकर व इसीतरह मरकरके पूरा करे। एक जीव द्वारा क्रमसे जन्म मरण करते हुए जितना काल लगता है उस सबके समुदायको क्षेत्र संसार कहते हैं। ऐसे क्षेत्र संसारको भी इस जीवने अनन्तवार किया है।

अंश रहित कालकी पर्याय समय है। जब अविभागी परमाणु एक कालाणुपरसे निकटवर्ती कालाणुपर मन्दगतिसे जाता है तब समय पर्याय उत्पन्न होती है। इस व्यवहार कालके समूहरूप दो काल प्रसिद्ध हैं। उत्सर्पिणी जहां शरीरादि बल सुख अधिक होते हैं। दूसरा अवसर्पिणी जब शरीरादि बल सुख कम होते जाते हैं।

जिनागममें हरएकके छः छः भेद कहे हैं। हरएककी काल मर्यादा दश कोड़ाकोड़ी सागरकी है। कोई जीव किसी उत्सर्पिणीके पहले समयमें जन्मे आयु पूर्णकर मरे, फिर कहीं यह जन्म लेवे, जब कभी किसी अन्य उत्सर्पिणीके दूसरे ही समयमें जन्मे, तब गिनतीमें लिया जावे। इस तरह फिर भ्रमण करते २ कभी किसी उत्सर्पिणीके तीसरे समयमें जन्मे, इस तरह क्रमसे उत्सर्पिणी कालके दश कोड़ाकोड़ी सागरके समयोंमें क्रमसे जन्म लेकर तथा क्रमसे मरण करके पूर्ण करे। इसी तरह अवसर्पिणी कालके भी दश कोड़ाकोड़ी सागरके समयोंको क्रमसे जन्म व मरण करके पूर्ण करे। इन सबका समूहरूप जो काल है वह काल संसार है। ऐसा काल संसार भी इस जीवने पूर्वमें अनन्तवार किया है।

भव संसारमें भव जीवकी कर्म द्वारा प्राप्त अशुद्ध पर्यायको कहते हैं। यह भव संसार चार प्रकारका है—नारक, देव, तिर्यंच, मनुष्य। देव व नरक गतिमें उत्कृष्ट आयु तेतीस सागरकी है व जघन्य आयु दश हजार वर्षकी है। नरक संसारका स्वरूप यह है कि कोई प्राणी नरककी जघन्य आयु दश हजार वर्षकी बांधकर नर्कमें नारकी हुआ। फिर वह मरके कहीं अन्यत्र पैदा हुआ। जब कभी उतनी ही दश हजार वर्षकी आयु बांधकर फिर नर्कमें पैदा हो तब वह भव गिना जावे। इस तरह दश हजार वर्षके जितने समय हैं उतनी बार दश हजार वर्षकी आयुधारी नारकी होता रहे, फिर एक समय अधिक दश हजार वर्ष धारी नारकी हो। फिर दो समय अधिक, इसतरह

एक एक समय अधिककी आयु क्रमसे धारकर नारकी जन्मे, बीचमें कम व अधिक धारकर जो जन्मे तो गणनामें नहीं आवे। इस तरह नरककी तेतीस सागरकी आयु नरक भव ले लेकर पूर्ण करे। तब एक नरक भव संसारका काल हो। इसी तरह देवगतिमें दश हजारकी आयुधारी देव हो। फिर नरकके समान ही क्रमसे जन्मे, उत्कृष्ट इकतीस सागर तक पूर्ण करे तब एक देव भव संसार हो। क्योंकि नोग्रैवेयिकसे ऊपर सम्यग्दृष्टी ही जाते हैं! इसी तरह तिर्यंच गतिमें जघन्य आयु अन्तर्मुहूर्तका धारी तिर्यंच हो। फिर जितने समय अंतर्मुहूर्तके है उतनीवार उतनी आयुधारी तिर्यंच हो, फिर एक समय अधिक आयु पाकर तीन पल्यतक क्रमसे आयु पावे। तब एक तिर्यंच भव परिवर्तन हो। इसी तरह मनुष्य भव संसारका स्वरूप है। चारों भव संसारोंका समूहरूप काल भव संसार है। नित्य निगोद जीवको छोडकर और सब संसारी जीवोंने इस भव संसारको भी अनंतवार किया है।

भाव संसारको कहते हैं—जीवके परिणामको भाव कहते हैं। वह भाव शुद्ध व अशुद्धके भेदसे दो प्रकारका है। संसारी जीवके ज्ञानावरणादि कर्मके विपाकसे जो भाव होता है वह अशुद्ध भाव है। सर्व कर्मोंके क्षय होनेपर जीवका निश्चल जो शुद्ध परिणाम है वह शुद्ध भाव है, जैसे अतीन्द्रिय सुख। कर्म सहित होनेसे अशुद्ध भावोंमें ही भावोंका परिवर्तन होता है, शुद्ध भावमें नहीं होता है। क्योंकि वह स्वाभाविक है। जैसे गधेके सींग नहीं होते हैं। कर्मोंकी

स्थिति बंधको कारणभूत असंख्यात लोकप्रमाण स्थितिबन्धाध्यव-साय स्थान या कषाय स्थान होते हैं। इसी तरह कर्मोंमें अनुभागको कारणभूत असंख्यात लोकप्रमाण अनुभागाध्यवसाय स्थान या कषाय स्थान होते हैं। जगत् श्रेणीके असंख्यातवें भाग मात्र योगस्थान होते हैं। उन सबके अविभाग प्रतिच्छेदकी अपेक्षा अनंत भेद होते हैं, उन भेदोंके चार भेद होते हैं—उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य, अज-घन्य। जघन्य योगस्थानसे लेकर क्रमसे उत्कृष्ट योगस्थान तक योगस्थान पूर्ण होजावे तब एक जघन्य अनुभागाध्यवसाय स्थान पूर्ण हुआ गिनना चाहिये। इसतरह फिर क्रमसे योगस्थान होजावे तब दूसरा अनुभाग स्थान पूर्ण हुआ। इसतरह सर्व अनुभाग स्थान भी पूर्ण होजावे तब जघन्य स्थितिबंधाध्यवसाय स्थान पूर्ण हुआ। इसतरह फिर योगस्थानको क्रमसे पूर्ण करके अनुभाग स्थान क्रमसे पूर्ण करे तब दूसरा स्थितिबंधाध्यवसाय स्थान पूर्ण हो। इसतरह जघन्य स्थितिको कारण सर्व स्थिति बन्धाध्यवसायस्थान पूर्ण होजावे तब जघन्यके एक समय अधिक स्थितिके लिये ऐसा ही क्रम हो, इस तरह हरएक कर्मकी जघन्यसे उत्कृष्ट स्थितिके लिये योगस्थान, अनु-भाग स्थल व स्थिति बंधाध्यवसायस्थान पूर्ण किये जावें। नित्य निगोदको छोड़कर भव संसारके समान भाव संसार भी अज्ञानी जीवोंने अनंतबार किया है। इसतरह पांच प्रकार संसारका स्वरूप समझकर मोक्ष—सुखके अर्थीको संसार रहित अपने आत्माकी आराधना मन, वचन, कायसे करनी योग्य है।

एकत्व भावना।

यह जीव द्रव्यके स्वभावकी अपेक्षा अनादि अनन्त एक ही स्वयं अकेला है, पर्यायोंकी अपेक्षा अनंत रूप होकर भी चैतन्य स्वरूपकी अपेक्षा एक ही है। यह अज्ञानी जीव मोह कर्मसे घिरा हुआ एकाकी ही इस लोकमें ऊर्ध, मध्य, पाताल, तीनों लोकमें भ्रमण किया करता है। कभी नर्कमें जाता है, वहां भी अकेला दुःख सहता है, कोई भी नर्कमें क्षणमात्रके लिये सहाई नहीं होता है। कभी पुण्यके उदयसे स्वर्गमें जाता है वहां भी अकेला ही स्वर्गके सुख भोगता है। ऐसा ही तिर्यंचगतिमें सहायरहित जन्मता है। ऐसा ही मनुष्यगतिमें पैदा होता है व अकेला ही मरता है। पुत्र पौत्र आदि, मित्र, बन्धु, स्वजन स्त्री आदि कोई भी किसी जीवके साथ नहीं जाता है। त्रस स्थावर कायोंकी नानाप्रकार लाखों योनियोंमें यह प्राणी अकेला भ्रमण करता हुआ नाना क्लेशोंको उठाता है, कोई कहीं क्षणमात्र भी दुःखको वार नहीं सक्ता है। यह जीव अकेला ही तपरूपी खड्गसे कर्मशत्रुओंका नाश जब पुरुषार्थ द्वारा कर डालता है तब अकेला ही केवलज्ञान लक्ष्मीको पाकर निर्भय परमात्म पदका भागी होता है। इस तरह संसार व मोक्ष दोनों अवस्थाओंमें जीवको अकेला ही समझकर सावधान होकर अनन्त सुख स्वरूप मोक्षको ग्रहण करना चाहिये।

अन्यत्व भावना।

इस जीवसे जब नाशवंत शरीरका ही लक्षण भिन्न है तब

शरीरके सम्बन्धी पुत्र आदि अपने कैसे होसक्ते हैं ? इस जीवके स्वभावसे निश्चय करके पांच इन्द्रियें व मन, वचन, काय सब भिन्न हैं। क्योंकि इनकी उत्पत्ति कर्मके उदयसे होती है। जो ये रागादि विभाव चैतन्य सरीखे दीखते हैं, ये भी मोहनीय कर्मके उदयसे होनेवाले भाव निश्चयसे शुद्ध चैतन्य स्वरूपसे भिन्न हैं। इसी तरह कर्मोंके उदयसे होनेवाले जीव समास, गुणस्थान, बन्धस्थान, योग-स्थान सब इस आत्माके स्वभावसे सर्वथा भिन्न हैं। बन्धके कारण भूत कषायके अध्यवसाय स्थान भी शुद्ध आत्माके स्वरूपसे भिन्न हैं। दोनोंका लक्षण भिन्न २ है। धर्मास्तिकाय, अधर्मास्तिकाय, आकाश, काल, पुद्गल, जीव आदि अनन्त जानने योग्य परपदार्थ हैं। वे उस जीवके ज्ञानमें झलकते हैं तथापि उनका द्रव्य क्षेत्र कालभाव इस अपने आत्माके द्रव्य, क्षेत्र, काल भावसे भिन्न है। मूर्तीक द्रव्यके परमाणु कर्म नोकर्म रूपसे व अन्यरूपसे जहां जीवके प्रदेश हैं वहां अनंत हैं तथापि ज्ञानस्वभावी आत्मासे सब अन्य हैं। वर्ग-रूप परमाणु व उनसे बनी हुई तेईस जातिकी वर्गणाएं वर्गणाओंके स्पर्द्धक, स्पर्द्धकोंकी गुण हानियां ये सब अपनी आत्मासे भिन्न हैं। ज्ञानावरणादि आठ प्रकारके कर्म व उनके असंख्यात भेद व सर्व प्रकारके नोकर्म अपनी आत्माके चैतन्य स्वरूपसे भिन्न हैं। इसीतरह कर्मसे होनेवाले मतिज्ञानादि क्षयोपशमिक भाव भी निश्चयसे इस जीवके कोई नहीं है। बहुत अधिक क्या कहें, एक चैतन्य मात्र आत्माको छोड़कर सब ही पर हैं, कोई भी पर उपादेय नहीं है।

जो कोई भेदविज्ञानी महात्मा सर्व अन्यको अन्य जानकर केवल अपने आत्माकी ही शरणमें जाता है वह शीघ्र ही अपने लिये साधनेयोग्य मोक्षको प्राप्त कर लेता है।

अशुचित्व भावना।

हमारा यह शरीर सर्वांग अशुचि है। इसकी उत्पत्ति शुक्र-शोणित पूर्ण योनिसे है। ये भीतर रुधिर मांस चरबीसे भरा हुआ मल मूत्रसे पूर्ण है। चर्मसे बन्धे हुए हड्डीके पिंजर हैं।

हे भाई! इस शरीरको भयानक, नाशवंत व संतापकारी समझो। यह शरीर ऐसा अपवित्र है कि संसारमें जो जो वस्तु स्वभावसे सुन्दर व पवित्र है वह सब इस शरीरके संयोगसे क्षणमात्रमें अपवित्र होजाती है। जैसे पानीमें शैवाल है जिससे पानी मैला दीखता है, परन्तु पानी शैवालसे भिन्न है। वैसे ही सर्व ही रागादि भाव मोह जनित हैं, ये स्वयं अपवित्र हैं। इसके संयोगसे आत्मा मैला झलकता है। मिथ्या दर्शनरूपी मलसे दूषित स्वर्गके देवोंको भी रागादिके होनेके कारण पवित्रपना नहीं है। इसलिये परम पवित्र तो एक चैतन्य स्वभावी अमूर्तीक शुद्धात्मा है, जो अनन्त गुणमई है व तीनों कालोंमें भी साक्षात् पवित्र है। अथवा दोष रहित सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान व सम्यक्चारित्र पवित्र है। इसलिये बुद्धिमानोंको उचित है कि सर्व प्रकारकी अन्तरङ्ग व बहिरंग अशुचिको छोड़कर एक शुचि पदार्थको ग्रहण करना चाहिये। वह शुचि पदार्थ एक चैतन्य लक्षण अपना आत्मा है।

आस्रव भावना।

आस्रवके दो भेद हैं—भाव आस्रव, द्रव्य आस्रव। कर्मोंका आना द्रव्यास्रव है। कर्मोंके आनेके कारण रागादिक भाव भावास्रव हैं। भावास्रवके भेद जिनेन्द्र भगवानने मिथ्यादर्शन, अविरति, कषाय तथा योगको कहा है। इन्हीं भावोंके द्वारा संसारी जीवोंके उसीतरह कर्म पुद्गल आते हैं, जिस तरह जलके बीचमें स्थित छिद्र सहित नावमें जल आता है। तत्वार्थोंका श्रद्धान न होना व औरका और श्रद्धान करना मिथ्यात्व है। आचार्योंने कहा है—उसके अनेक भेद हैं। सामान्यसे मिथ्यात्व एक प्रकारका है। विशेषसे उसके पांच भेद हैं, अथवा असंख्यात लोक मात्र मिथ्यात्वभाव संबंधी अध्यवसाय है। पांच भेद—एकांत, विपरीत, विनय, संशय व अज्ञान है। इनका स्वरूप परमागमसे जानना चाहिये। बुद्धिके अगोचर सूक्ष्म भाव असंख्यात लोक प्रमाण है। जो आत्माको कषन करे, मलीन करे, उनको कषाय कहते हैं। चारित्र मोहनीयके उदयसे होनेवाले कषाय भाव पच्चीस प्रकारके हैं—चार अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया, लोभ, चार अप्रत्याख्यान क्रोधादि, चार प्रत्याख्यान क्रोधादि, चार संज्वलन क्रोधादि, सर्व मिलके षोड़श कषाय हैं। नव नोकषाय या ईषत् कषाय हैं। हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्रीवेद, पुंवेद, नपुँसक वेद, ये सर्व पच्चीस कषाय महान अनर्थ करनेवाले भाव कर्मोंके आस्रवके द्वार हैं। अविरति भाव बारह हैं, वे यद्यपि कषायोंमें गर्भित हैं तथापि भिन्न भी कहे गये हैं। पांच इन्द्रिय व मनका वश न रखना। छः अविरति भाव ये हैं—पांच प्रकार स्थावर

एक त्रस इसतरह छः प्रकार प्राणियोंके प्राणोंकी हिंसा करना। छः ये हैं—

स्वानुभूतिको धर्म कहते हैं। जिससे स्वानुभूतिमें असावधानी होजावे उसको प्रमाद कहते हैं। धर्मः स्वात्मानुभूत्याख्या प्रमादो नवधानता। यह कर्मास्रवका द्वार पन्द्रह प्रकारका है। चार विकथा स्त्री, भोजन, देश व राजा। उनके साथ चार कषाय व पांच इन्द्रिय निद्रा व स्नेह। इनके गुणा करनेसे प्रमादके अस्सी भेद होते हैं। मन, वचन, कायकी वर्गणाओंके निमित्तसे आत्माके प्रदेशोंका परिस्पंद होना—हिलना, सो योग तीन प्रकारका है। इनके भेद पन्द्रह हैं—सत्य, असत्य, उभय, अनुभय, मनयोग तथा सत्यादि वचन योग व सात प्रकार काय योग, औदारिक, औदारिक मिश्र, वैक्रियिक, वैक्रियिक मिश्र, आहारक, आहारक मिश्र, कार्मण। सब मिलके आस्रव भाव सत्तावन हैं। ५ मिथ्यात्व + १२ अविरत + २५ कषाय + १५ योग = ५७ इनका विशेष स्वरूप गोम्मटसारादि ग्रंथोंसे जानना योग्य है। कर्म स्वरूपसे एक प्रकार है। द्रव्य कर्म व भावकर्मके भेदसे दो प्रकार है। द्रव्यकर्म आठ प्रकार व एकसौ अड़तालीस प्रकार है या असंख्यात लोक प्रकार है। शक्तिकी अपेक्षा इनके भेद उत्कृष्ट, अनुत्कृष्ट, जघन्य, अजघन्य। यह सब कथन परमागमसे जानना योग्य है।

संवर भावना।

निश्चयसे सर्व ही आस्रव त्यागने योग्य हैं। आस्रव रहित एक अपना आत्मा शुद्धात्मानुभूति रूपसे ग्रहण करने योग्य है।

आचार्योंने आस्रवके निरोधको संवर कहा है। उसके दो भेद हैं—द्रव्यास्रव और भावास्रव। जितने अंशमें सम्यग्दृष्टियोंके कषायोंका निग्रह है उतने अंशमें भाव संवर जानना योग्य है। कहा है—

येनांशेन कषायाणां निग्रहः स्यात्सुदृष्टिनाम्।
तेनांशेन प्रयुज्येत संवरो भावसंज्ञकः ॥ ११३ ॥

भावार्थ—भाव संवरके विशेष भेद पांच व्रत, पांच समिति, तीन गुप्ति, दश धर्म, बारह भावना, बाईस परीषह जय व पांच प्रकार चारित्र है।

रागादि भावोंके न होनेपर जितने अंश कर्मोंका आस्रव नहीं होता है उतने अंश द्रव्यसंवर कहा जाता है। मोक्षका साधन संवरसे होता है। अतएव इसका सेवन सदा करना चाहिये। निश्चयसे भाव संवरका अविनाभावी शुद्ध चैतन्य भावका अनुभव है सो सदा कर्तव्य है।

निर्जरा भावना।

निर्जरा भी दो प्रकारकी है—भाव निर्जरा और द्रव्य निर्जरा। द्रव्य निर्जरा सम्यग्दृष्टीसे लेकर जिन पर्यंत ग्यारह स्थानोंके द्वारा असंख्यात गुणी भी कही गई है। जिस आत्माके शुद्ध भावसे पूर्वबद्ध कर्म शीघ्र अपने रसको सुखाकर झड़ जाते हैं उस शुद्ध भावको भाव निर्जरा कहते हैं। आत्माके शुद्ध भावके द्वारा तपके अतिशयसे भी जो पूर्वबद्ध द्रव्यकर्मोंका पतन होना सो द्रव्य निर्जरा है।

जो कर्म अपनी स्थितिके पाक समयमें रस देकर झडते हैं वह सविपाक निर्जरा है। वह सर्व जीवोंमें हुआ करती है। यह

सविपाक निर्जरा मिथ्यादृष्टियोंके बंधपूर्वक होती है। क्योंकि तब मोहका उदय होता है। इसलिये यह निर्जरा मोक्षसाधक नहीं है। सम्यग्दृष्टियोंके सविपाक या अविपाक निर्जरा संवर पूर्वक होती है। यह मोक्षकी साधक है। ऐसी निर्जरा मिथ्यादृष्टियोंके कभी नहीं होती है। कहा है–

इयं मिथ्यादृशामेव यदा स्याद्बंधपूर्विका।
मुक्तये न तदा ज्ञेया मोहोदयपुरःसरा ॥ १३० ॥
सविपाका विपाका वा सा स्यात्संवरपूर्विका।
निर्जरा सुदृशामेव नापि मिथ्यादृशां क्वचित् ॥ १३१ ॥

मोक्षकी सिद्धि चाहनेवालोंको उचित है कि निर्जराका लक्षण जानकर उस निर्जराके लिये सर्व प्रकार उद्यम करके शुद्धात्माका आराधन करें।

लोक भावना।

इस छः द्रव्योंसे भरे लोकके तीन भाग हैं–नीचे वेत्रासन या मोढेके आकार है। मध्यमें झालरके समान है, ऊपर मृदंगके समान है, अधोलोकमें सात नरक हैं जिनमें नारकी जीव पापके उदयसे छेदनादिके घोर दुःख सहन करते हैं। कोई जीव पुण्यके उदयसे ऊर्द्धलोकमें स्वर्गोंमें पैदा होकर सागरोंतक सुख सम्पदाको भोगते हैं। मध्यलोकमें तिर्यंच व मनुष्य होकर पुण्य व पापके उदयसे कभी सुख कभी दुःख दोनों भोगते हैं। लोकके अग्रभागके ऊपर मनुष्य लोकके ढाईद्वीप प्रमाण पैंतालीस लाख योजन चौड़ा सिद्धक्षेत्र

है, जहां अनन्त सुखको भोगते हुए सिद्ध परमात्मा बसते हैं। इस तरह तीन लोकका स्वरूप जानकर महाऋषिगण मोहको क्षयकर सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्रमई मार्गके द्वारा लोकके ऊपर जो सिद्धालय है उसमें जानेका साधन करते हैं।

बोधिदुर्लभ भावना।

एकाग्रमन होकर आत्माका अनुभव करना सो बोधि है, इस बोधिका लाभ जीवोंको बहुत दुर्लभ है यह विचारना बोधि दुर्लभ भावना है। अनादि नित्य निगोदरूप साधारण वनस्पतियोंमें अनंतानंत जीवोंका नित्य स्थान है। अनन्तकाल रहनेपरभी कोई जब कभी वहांसे निकलते हैं। और पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, प्रत्येक वनस्पतिके किसी तरह जन्म प्राप्त करते हैं। नित्यनिगोदके सम्बन्धमें कहा है–

अनंतानंतजीवानां सबानादिवनस्पतौ।
निःसरंति ततः केचिद्गतेऽनंतेऽप्यनेहसि ॥ १४० ॥

भावार्थ–अशुभ कर्मोंके कम होनेपर व अज्ञान अंधकारके कुछ मिटनेपर एकेन्द्रियसे निकलकर द्वेन्द्रियादि तिर्यंच होते हैं उनमें पर्याप्तपना पाना बहुत कठिन है। प्रायः अपर्याप्त जीव बहुत होते हैं जो एक श्वास (नाड़ी) के अठारहवें भाग आयुको पाकर मरते हैं। इनमें भी पंचेन्द्रिय तिर्यंच होना बहुत कठिन है। असैनी पंचेन्द्रियसे सैनी पंचेंद्रिय फिर मनुष्य होना बहुत दुर्लभ है। कदाचित् कोई मनुष्य भी हुआ तब आर्यखण्डमें जन्मना कठिन है। आर्यखण्डमें

उच्च कुलमें जन्मना जहां जैनधर्मका समागम हो बहुत कठिन है। जैन कुलमें जन्म लेकर दीर्घ आयु, शरीरकी निरोग्यता पाना बहुत दुर्लभ है। ये सब कठिनतासे पानेवाली बातें पुण्योदयसे मिल जावें तोभी विषयोंमें अंधपना होजाना सहज है। धर्मकी ओर बुद्धिका होना कठिन है। धर्मबुद्धि भी कदाचित प्राप्त हुई तो धर्ममें प्रवीणपना होना दुर्लभ है। धर्ममें निपुणता होनेपर भी गुरुका उपदेश मिलना कठिन है। गुरुका उपदेश मिलनेपर भी कषायोंका निरोध अति दुर्लभ है। कषाय निरोध होनेपर भी कर्मोंका नाश करनेवाला संयमका लाभ कठिन है। संयमका लाभ होनेपर भी काललब्धिके वशसे शुद्ध चैतन्यका अनुभव होना अतिशय दुर्लभ है। क्षयोपशम, विशुद्धि, देशना, प्रायोग्य, चार लब्धि तो कईबार पाई, करणलब्धिका पाना कठिन है। जो अवश्य सम्यक्तको उत्पन्न कर देती है। तात्पर्य यह है कि परमार्थकी इच्छा करनेवालोंको दुर्लभ स्वानुभूतिके प्राप्त होजानेपर फिर स्वानुभवके भवनमें प्रमाद कभी नहीं करना चाहिये।

धर्म भावना।

धर्म शब्दके अनेक अर्थ हैं, तौभी एक अर्थमें किया जावे तो यह कहा जायगा कि जो जीवको नीचपदसे निकालकर उच्चपदमें धारण करे वह धर्म है। निश्चयसे धर्म आत्मवस्तुका स्वभाव है। वह धर्म साम्यभावमें स्थित चिदात्माका शुद्ध चारित्र है। इसीसे कर्मोंका क्षय होसक्ता है। कहा है—

धर्मो वस्तुस्वभावः स्यात्कर्मनिर्मूलनक्षमः ।
तथैव शुद्धचारित्रं साम्यभावचिदात्मनः ॥ १५४ ॥

भावार्थ—व्यवहार नयसे संयमका पालन धर्म है, जिनका मूल सर्व प्राणीमात्रपर दयाभाव है तथा शील सहित तप है । यह धर्म आश्रयके भेदसे दो प्रकारका है—एक साधुका दूसरा गृहस्थका । सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्रके भेदसे तीन प्रकारका है । दशलक्षणके भेदसे दश प्रकारका है । वे दशलक्षण हैं:—उत्तम क्षमा, उत्तम मार्दव, उत्तम आर्जव, उत्तम सत्य, उत्तम शौच, उत्तम संयम, उत्तम तप, उत्तम त्याग, उत्तम आकिंचन्य, उत्तम ब्रह्मचर्य ।

धर्म इस लोक व परलोकमें खर्ची या पाथेय है, सदा सहायक है, नित्य उपकार करनेवाला है। यही प्राणियोंका सच्चा पिता है, सच्ची माता है, सच्चा बन्धु है, सच्चा देव है । ऐसा मानकर बुद्धिमानोंको सदा धर्मसाधनमें बुद्धि रखनी चाहिये । कभी भी संतोषी होकर धर्मसाधन रोकना न चाहिये । प्राणियोंके लिये धर्म बिना सर्व दिशाएं शून्य हैं। ऐसा जानकर सावधान हो सदा अपना हित करना चाहिये ।

इसतरह विद्युच्चर साधु व अन्य साधु बारह भावनाओंको चिन्तवन करते थे, जब उनपर घोर उपसर्ग होरहा था। देहसे भिन्न मेरा चैतन्यमई आत्मा है जो केवल स्वानुभवगोचर है, इस भावनाके बलसे विद्युच्चर मुनिने सर्व परिषहोंको जीत लिया । उपसर्ग दूर

होनेपर मुनिराज ऐसे सोहने लगे जैसे मेघरहित तेजस्वी सूर्य सोहे। प्रातःकाल होते होते सन्यासविधिके अंतमें चार प्रकार आराधना आराधके मुनिराजका आत्मा शरीर छोड़कर सर्वार्थसिद्धिमें जाकर अहमिंद्र उत्पन्न हुआ। वहां तेईस सागरकी बड़ी आयु है।

तबतक अहमिन्द्र पदमें वह जीव निरंतर वचन अगोचर सुख भोगते हैं, जो अल्प पुण्यवालोंको दुर्लभ है। वहांसे च्युत होकर अंतिम शरीर पाकर केवलज्ञानको प्राप्त कर वे परम गतिको पहुंचेंगे अनंत सुखमई, अनंत वीर्यमई व केवलज्ञानमई शुद्धात्मारूपी सूर्यको बारबार नमस्कार हो।

प्रभव आदि पांचसौ मुनीश्वर भी सन्यास मरण करके परिणामोंके अनुसार यथायोग्य स्वर्गमें जाकर देव हुए।

मुझ तुच्छ बुद्धि (राजमल्ल) ने इस जंबुस्वामी जिनेन्द्रके उत्तम चरित्रको जैनागमके अनुसार कहा है। हे जगत् वंद्य सरस्वती माता! यदि प्रमादसे स्वर, व्यंजन, संधि आदिमें कोई भूल होगई हो तो क्षमा करना उचित है। शास्त्र समुद्र अपार है, परम गंभीर है, दुस्तर है। पृथ्वीमें बड़ा भारी विद्वान हो, वह भी भूल कर सकता है।

जो कोई भव्यजीव इस मुनिवर श्री जंबुस्वामी महाराजके समान ऐसा तप करेगा, जो तप पांच इन्द्रियरूपी शत्रुके विशाल कामभावरूपी भयानक वनको जलानेको दावानलके समान है वह परम सुखका भाजन होगा, ऐसा जानकर बुद्धिमानोंको रातदिन

अपने ऊपर दयावान हो चित्तमें तपकी भावना करनी चाहिये। यदि मोक्षके उत्तम सुखकी बांछा है तो प्रमाद न करना चाहिये।

जो कोई इस श्री जम्बूस्वामी मुनिराजके नाना चित्र विचित्र कथाओंसे विभूषित व ज्ञानप्रद चरित्रको सुनेंगे उनको बहुत पुण्य कर्मका बन्ध होता, बुद्धि स्वयं बढ़ेगी, वे सर्व सांसारिक सुखकी आशाको छोड़कर शीघ्र धर्मात्मा होजांयगे। यह चरित्र रोमांचजनक है। मुनिराजोंको भी पढ़ना या पढ़ाना चाहिये। हे सरस्वतीदेवी! यदि मैंने प्रमादसे व अज्ञानसे कुछ कम व अधिक कहा हो तो तु मुझे क्षमा प्रदान करना। श्री वीर भगवानके पीछे अंतिम केवली श्री जम्बूस्वामी जिनराज हुए हैं। हे भव्यजीवो! वे तुम सबको सदा मंगलकारी हों।

इसतरह श्री वीर भगवानके उपदेशके अनुसार स्याद्वाद व निर्दोष गद्य पद्य विद्यामें विशारद पंडित राजमल्लने साधुपासाके पुत्र साधु टोडरकी प्रार्थना करनेसे यह श्री जम्बूस्वामी चरित्र रचा है।

टीका समाप्त की दाहोद पंचमहल गुजरातमें, दिगम्बर जैन धर्मशालामें, भादों सुदी १४ रविवार वीर सं० २४६३ वि० सं० १९९३ ता० ४ सितम्बर १९३७ ई० को।

सत्यप्रेमी–ब्रह्मचारी सीतलप्रसाद जैन।

संस्कृत ग्रन्थकारकी लिखित प्रशस्तिका भाव ।

विक्रम संवत १६३२ चैत्र सुदी ८ पुनर्वसु नक्षत्रमें जब अर्गलपुर या आगरेके किलेमें पातिसाह जलालुद्दीन अकबर शाहका राज्य था। तब काष्ठासंघ माथुरगच्छमें पुष्करगणमें लोहाचार्यके अन्वयी भट्टारक श्रीमलयकीर्तिदेवके पदपर भ० गुणभद्र और उनके पदपर श्रीभानुकीर्ति तथा उनके पदपर भट्टारक श्री कुमारसेन हुए हैं, उनकी आम्नायमें अगरवाल जाति गर्ग गोत्रधारी भटानिया-कोलके निवासी श्रावक साधु श्रीनन्दन उनके भ्राता साधु श्री आसू उसकी स्त्री सरो उसके तीन पुत्र हुए। बड़े पुत्र साहु रूपचन्द भार्या जिनमती, उनके पुत्र भी तीन, प्रथम पुत्र साधु जसरथ भार्या गाबो व उसके भी पुत्र तीन, प्रथम पुत्र साह लोरचन्द भार्या प्यारी, इसके पुत्र साह गरीबदास भार्या हमीरदे। इसके पुत्र पांच प्रथम साह हेमराज, भार्या...., साह जसरथके दूसरे पुत्र साधु श्रीछल्लू भार्या भवानी उसके पुत्र साधु चोजसाल भार्या बूबो, साह जसरथके तीसरे पुत्र साधु चोहथ भार्या भागमती, उसके पुत्र दो, प्रथम साधु भोपाल भार्या पारो, पुत्र लालचन्द।

साधु चौहथके दूसरे पुत्र नारणदास भार्या...., साधु रूपचंदके

दूसरा पुत्र साधु रायमल भार्या चिरो, पुत्र साह नथमल भार्या चांदनदे। साधु रूपचन्दके तृतीय पुत्र साधु श्रीपासा भार्या घोवा, पुत्र साधु टोडर, भार्या कसूँभी, पुत्र तीन प्रथम साधु श्री ऋषभदास भार्या कालमती दूसरे पुत्र मोहनदास भार्या मथुरी, तीसरे पुत्र चिरंजीवी रूपमांगद। इन सबके मध्यमें परम श्रावक साधु श्री टोडरने जंबूस्वामी चरित्र लिखवाया व करवाया व कर्मक्षयके निमित्त लिखवाया। लिखा गंगादासने।
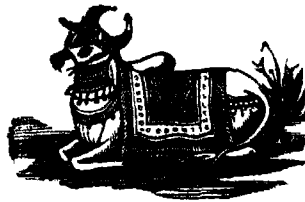
हिन्दी टीकाकारकी प्रशस्ति ।

मंगल श्री अरहंत हैं, मंगल सिद्ध महान ।
आचारज उवझाय मुनि, मंगलमय सुखदान ॥ १ ॥
युक्तप्रांत लखनौ नगर, अग्रवाल कुल जान ।
मंगलसेन महागुणी, जिनधर्मी मतिमान ॥ २ ॥
जिन सुत मक्खनलालजी, गृही धर्ममें लीन ।
तृतीय पुत्र सीतल यही, जैनागम रुचि कीन ॥ ३ ॥
विक्रम उन्निस पैंतिसे, जन्म सु कार्तिक मास ।
बत्तिसवय अनुमानमें, घरसे भयो उदास ॥ ४ ॥
श्रावक धर्म सम्हालते, विहरे भारत ग्राम ।
उन्निससै सैंतानके, दाहोदे विश्राम ॥ ५ ॥
सात घर जैन दिगंबरी, दसा हूमड़ जाति ।
इक मंदिर उत्तम लसै, शिखरबंद बहु भांति ॥ ६ ॥
नसियां लसत सुहावनी, बाका वाला बाक ।
सन्तोषचन्द जीतमल, लुणानी चुन्नीलाल ॥ ७ ॥
सूरजमल औ राजमल, उच्छवलाल सुजान ।
पन्नालाल चतुर्भुज, आदि धर्मिजन जान ॥ ८ ॥

सुखसे वर्षाकालमें, ठहरा शाला धर्म।
ग्रन्थ कियो पूरण यहां मंगलदायक पर्म॥ ९॥

वीर चौवीस त्रेसठे, भादव चौदश शुक्ल।
रवि दिन संपूरण भयो, वंदू श्री जिन शुक्ल॥ १०॥

विद्वानोंसे प्रार्थना, टीकामें हो भूल।
क्षमाभाव धर शोधियो, देखो संस्कृत मूल॥ ११॥

वीरभक्त–ब्र० सीतल।